प्रकाशक
हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

मूल्य ५)

मुद्रक—ऐ० के० शर्मा
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस
इलाहाबाद

पृष्ठ

विषय

विषय — पृष्ठ

दूसरा परिच्छेद — १३६

१. दुष्ट वर्ग — १३६

विषय पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय | पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

पहला परिच्छेद

११. परोसत वर्ग

१०१. परोसत जातक

परोसतञ्चेपि समागतानं
झायेय्युं ते वस्ससतं अपञ्ञा,
एकोव सेय्यो पुरिसो सपञ्ञो
यो भासितस्स विजानाति अत्थं ॥

[प्रज्ञाहीन सौ से अधिक इकट्ठे हुए मनुष्य यदि सौ वर्ष तक भी ध्यान लगाते रहें तो उनकी अपेक्षा एक प्रज्ञावान् मनुष्य जो कही हुई बात के (गम्भीर) अर्थ को जान लेता है, अच्छा है।]

कथा की दृष्टि से, व्याख्या (व्याकरण) की दृष्टि से, सारांश की दृष्टि से यह जातक (कथा) परोसहस्स जातक[1] के समान ही है। इसमें केवल 'ध्यान करें' पद की विशेषता है। जिसका अर्थ है कि प्रज्ञा-रहित मनुष्य सौ वर्ष भी ध्यान करते रहें, देखते रहें, धारण करते रहें; इस प्रकार देखते हुये भी वह गूढ़ (अर्थ) को अथवा (असली) बात को नहीं देख पाते। इसलिये जो मनुष्य कही बात के अर्थ को जानता है वह प्रज्ञावान् अकेला ही अच्छा है।

---

[1] परोसहस्स जातक (९९)

१०२. पण्णिक जातक

"यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं .." आदि (की कथा) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक दुकानदार उपासक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती निवासी उपासक नाना प्रकार की जड़ी-बूटी तथा लौकी-कद्दू आदि बेच कर गुजारा करता था। उसकी एक लड़की थी। रूपवान, सुन्दर, सदाचारिणी तथा लज्जा-भय से युक्त, (लेकिन साथ ही) सदा हँसती रहती थी। बराबरी के कुलवाला के लड़की को ब्याहने आने (की इच्छा करते) पर, वह सोचने लगा—'इसकी शादी होगी। यह सदैव हँसती रहती है। सदाचार का नष्ट करके यदि कुमारी दूसरे कुल में जाती है, तो माता-पिता के लिए निन्दा का कारण होती है। मैं इसकी परीक्षा करूँगा कि इसका सदाचार सुरक्षित है कि नहीं?"

एक दिन उसने लड़की से टोकरी उठवा, पत्तों के लिये जंगल में जाकर, उसकी परीक्षा करने की इच्छा से कामासक्त की भाँति हो, गुप्त बात कह उसे हाथ से पकड़ लिया। वैसे ही उस पकड़ा उसने रोते चिल्लाते हुए कहा—'तात! यह अनुचित है, यह पानी से आग निकलने के सदृश है। ऐसा न करें।'

"अम्म! मैंने केवल परीक्षा करने के लिए ही तुझे हाथ से पकड़ा था। कह, क्या तू अब तक कुमारी (अक्षता) है या नहीं?"

"[illegible] हूँ। मैंने लोभ के वशीभूत हो किसी भी पुरुष की ओर नहीं देखा।"

उसने लड़की को आश्वासन दे, घर ले जा, विवाह करके पति के कुल भेजा। (फिर) शास्ता को वन्दना करने की इच्छा से, गन्ध माला आदि हाथ में ले,

तब पिता ने उसे आश्वासन देकर पूछा—"अम्म ! तूने अपने आप को स्वरक्षित तो रखा है ?"

"हाँ, तात ! मैंने अपने आपको (सँभाल कर) रखा है।"

उसने उसे घर ले जा विवाह कर, पराये कुल भेज दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना, (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर, जातक का मेल बैठाया। सत्यों (के प्रकाशन) के अंत में उपासक स्रोतापत्तिफल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय का पिता ही इस समय का पिता; लड़की ही इस समय की लड़की है। लेकिन उस बात को प्रत्यक्ष देखनेवाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

१०३. वेरी जातक

"यत्थ वेरी निविसति. . ."आदि गाथा शास्ता ने जेतवन में रहते समय अनाथ पिण्डिक के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

अनाथ पिण्डिक ने अपने भोग-ग्राम[1] से लौटते हुए रास्ते में चोरों को देख-कर सोचा—"रास्ते में रहना ठीक नहीं। श्रावस्ती ही जाकर रहूँगा।" यह सोच जल्दी जल्दी बैलों को हाँक, श्रावस्ती पहुँच, अगले दिन जब विहार गया, तो शास्ता को यह बात कही। शास्ता ने "गृहपति ! पूर्व समय में भी पण्डित-जन रास्ते में चोरों को देखकर रास्ते में न ठहर, अपने रहने के स्थान पर ही चले गये" कह उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

---

[1] भोगग्राम=जमींदारी का ग्राम।

१०४. मित्तविन्द जातक

"चतुब्भि अट्ठज्झगमा" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय, एक दुर्भागी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

पहले आई मित्तविन्द जातक की कहानी के सदृश ही यह कहानी भी जाननी चाहिये।

ख. अतीत कथा

लेकिन यह जातक कथा है काश्यप-सम्बुद्ध के समय की। उस समय एक नरक-निवासी ने, जिसके सिर पर घूमनेवाला चक्र[1] था और जो नरक में जल रहा था, बोधिसत्व से पूछा—"भन्ते! मैंने क्या पापकर्म किया है?" बोधिसत्व ने "तूने अमुक और अमुक पापकर्म किया है" कह यह गाथा कही—

> चतुब्भि अट्ठज्झगमा अट्ठाहि चापि सोळस
> सोळसाहि च बत्तिंस अत्रिच्छं चक्कमासदो;
> इच्छाहतस्स पोसस्स चक्कं भमति मत्थके ॥

[चार से आठ, आठ से सोलह और सोलह से बत्तीस की इच्छा करने के कारण यह सिर पर घूमनेवाला चक्र प्राप्त हुआ। क्योंकि इच्छा (लोभ) से पीड़ित मनुष्य के सिर पर चक्र भ्रमता है।]

---

[1] उरचक्र—पालि-कोश में (चिल्डर्स ने) उर-चक्र का अर्थ छाती पर रक्खा पत्थर का चक्र किया है, जो यथार्थ नहीं। 'उर' शब्द वैदिक है, जिसका अर्थ है परिभ्रमण।

चतुब्भि अट्ठज्झगमा, समुद्र में चार परियों (विमान-प्रेतनियों) को पाकर, उन से सन्तुष्ट न हो, लोभ के कारण और आठ को प्राप्त किया। शेष दो पदों का अर्थ भी इसी प्रकार है। अभिरूपं चक्कमासदो इस प्रकार स्वकीय लाभ से असन्तुष्ट इस इस चीज की प्राप्ति होने पर, और और चीज की इच्छा करते हुए, अब इस उर-चक्र को प्राप्त हुए। उसके इस प्रकार इच्छाहतस्स पोसस्स तृष्णा से प्रताड़ित तेरे चक्कं भमति मत्थके, पत्थर तथा लोहे के दो प्रकार के चक्रों में से तेज धार वाला लोहे का चक्र, फिर फिर उसके माथे पर गिरने से ऐसा कहा गया।

यह कहकर (बोधिसत्व) स्वयं देवलोक को गये। वह नरकगामी प्राणी भी अपने पापकर्मों के क्षीण होने पर कर्मानुसार अवस्था को प्राप्त हुआ। शास्ता ने इस धर्म-देशना को ला जातक का मेल बैठाया—उस समय मित्त-विन्दक (अब का) दुर्वचोभिक्षु था, और देवपुत्र तो मैं ही था।

१०५. दुब्बलकट्ठ जातक

"बहुम्पेतं वने कट्ठं" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक भय-भीत भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्ती-निवासी तरुण शास्ता का धर्मोपदेश सुन, प्रव्रजित हो मरने से भयभीत रहता था। रात या दिन में हवा के चलने पर सूखी-टहनी के गिरने पर तथा पक्षियों या चौपायों के कुछ शब्द करने पर मरण-भय से डरकर वह जोर से चिल्लाता हुआ भागता। 'मुझे भी मरना होगा', इसका उसे ध्यान तक न था। यदि वह यह जानता कि 'मैं मरूँगा' तो उसे मरने

से डर न लगता। वह मरण-स्मृति योग-विधि (=कर्मस्थान) का अनभ्यासी होने से ही डरता था। उसकी मृत्युभय से भयभीत होने की बात भिक्षु-संघ को पता लग गई। सो एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बात चलाई —आयुष्मानो! अमुक मरण-भीरु भिक्षु मृत्यु से डरता है। भिक्षु को तो चाहिये कि वह 'मुझे अवश्य ही मरना है' इस मरण-स्मृति कर्मस्थान की भावना करे। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बात-चीत कर रहे हो?" "यह बातचीत" कहने पर भगवान् ने उस भिक्षु को बुलवाया और पूछा—क्या तुझे सचमुच मरने से डर लगता है?

"भन्ते! सचमुच।"

"भिक्षुओ! इस भिक्षु से असन्तुष्ट मन होओ। यह भिक्षु केवल अब ही मरने से भयभीत नहीं है; पहले भी भय भीत ही रहा है। वह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय, बोधिसत्व हिमालय में वृक्ष-देवता की योनि में उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी-नरेश ने हस्ति-शिक्षकों को अपना हाथी दिया था ताकि वे उसे निर्भय बनावें। उन्होंने भाले ले, हाथी को पक्की तरह से खूंटे से बांध, उसे घेर उसका डर निकालना शुरु किया। इस पीड़ा को न सह सकने के कारण हाथी ने खूंटा तुड़ा, मनुष्यों को भगा, स्वयं हिमालय में प्रवेश किया। आदमी उसको न पकड़ सकने के कारण वापिस लौट आये। हाथी को वहाँ मरण-भय लग गया। वायु के शब्द को सुनकर, कांपता हुआ, मरने के भय से भय-भीत अपनी सूँड को धुनता हुआ जोर से भागता। इसको ऐसा लगता था जैसे खूँटे पर बाँध कर साधा जा रहा हो। शरीर-सुख वा मानसिकसुख एक भी नहीं मिलता था। कांपता हुआ भटकता था। वृक्ष-देवता ने यह देखकर वृक्ष-की शाखा पर खड़े होकर यह गाथा कही—

> बहूनमेतं वने कट्ठं वातो भञ्जति दुब्बलं,
> तस्स चे भायसि नाग! किसो नून भविस्ससि॥

"भगवान् ! सचमुच ।"

"तुझे किसमें आसक्ति हुई ?"

"एक प्रौढ़ कुमारी में ।"

"भिक्षु ! यह तेरे लिये अनर्थकारी है । पहले जन्म में भी तू इसी के कारण सदाचार भ्रष्ट हो कौतना हुआ भटकता था । (फिर) पण्डितों के कारण सुख को प्राप्त हुआ ।" यह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

"पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय" आदि पूर्व समय की कथा भी चुल्ल नारद कस्सप जातक में ही आयेगी । उस समय बोधिसत्व शाम को फल फूल ले आकर पर्ण-शाला में प्रवेश करके विचरने लगे और अपने पुत्र चुल्लतापस को कहा—

"तात ! और दिन तो तुम लकड़ी लाते थे, पेय तथा खाद्य-सामग्री लाते थे, आग जलाते थे । आज क्या कारण है कि कोई भी काम न करके बुरा मुँह बनाये चिन्तित पड़े हो ?"

"तात ! आप जब फल फूल लेने चले गये थे, तब एक स्त्री आई जो मुझे लुभाकर ले जाना चाहती थी । लेकिन मैं 'आपसे आज्ञा लेकर आऊँगा' सोच नहीं गया । उसको अमुक स्थान में बिठाकर आया हूँ । तात ! अब मैं जाता हूँ ।"

बोधिसत्व ने 'यह रोका नहीं जा सकता' सोच "तो तात ! जाओ ! यह तुम्हें ले जाकर जब मत्स्य-मास आदि खाने की इच्छा करेगी और घी, निमक तथा तेल आदि माँगेगी और कहेगी कि 'यह ला', 'यह ला', तब तू मुझे याद करना और भागकर यहीं आ जाना" कह चलता किया । वह उसके साथ बस्ती में गया । उसे अपने वश में कर वह 'मास ला', 'मछली ला' जो जो चाहती, मँगाती । तब उसने 'यह तो मुझे अपने गुलाम की तरह नौकर की तरह पीड़ा देती है' सोच भागकर पिता के पास आ, उन्हें प्रणाम कर, खड़े ही खड़े यह गाथा कही—

सुखं वत मं जीवन्तं पचमाना उदञ्चनी,
चोरो जायप्पवादेन तेलं लोणञ्च याचति ॥

१०७. सालित्त जातक

"साधु खो सिप्पकं नाम" आदि शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक हंस-मार भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह श्रावस्तीवासी कुलपुत्र सालित्तक शिल्प में पारङ्गत था। सालित्तक शिल्प कहते हैं ठीकरी चलाने के हुनर को। एक दिन उसने धर्मोपदेश सुन, बुद्ध (-शासन) में श्रद्धायुक्त हो प्रव्रजित होकर उपसम्पदा प्राप्त की। लेकिन न उसे शिक्षा की इच्छा थी न उसके अनुसार आचरण करने की। एक दिन वह एक छोटे भिक्षु को साथ ले अचिरवती (नदी) पर गया। वहाँ स्नान करके खड़ा था कि, उसी समय आकाश में दो सफ़ेद हंसों को उड़ते देखा। उसने छोटे भिक्षु से कहा—

"इनमें जो पिछला हंस है, उसकी आँख को कंकर से बींधकर हंस को अपने पैरों में गिराता हूँ।"

"कैसे गिरायेगा? मार ही न सकेगा।"

"इधर की आँख रहे। मैं इसकी उधर की आँख से मारूँगा।"

"असम्भव बात कहते हो?"

"तो देख" कह उसने एक तीखी ठीकरी ले उँगली से तान उस हंस के पीछे फेंकी। ठीकरी ने 'रू' करके आवाज की। हंस "खतरा होगा" सोच, रुककर शब्द सुनने लगा। उसने उसी समय एक गोल कंकर ले, रुककर देखते हुए हंस के दूसरी ओर की आँख में मारा। कंकर दूसरी ओर की आँख बींधता गया। हंस चिल्लाता हुआ पैरों में आकर गिरा।

भिक्षुओं ने इधर उधर से आकर उसकी निन्दा की कि "तू ने नामुनासिब किया" और शास्ता के पास ले जाकर कह दिया कि 'इसने यह यह किया।'

बिछवाया। नलकी भर बकरी की सूखी मींगन कुबड़े के पास रखवा दी। जिस समय ब्राह्मण हुजूरी में आया, उसे उस आसन पर बिठवा, राजा ने बात चीत चलाई। किसी दूसरे को बोलने का अवसर न दे, ब्राह्मण ने राजा से बोलना शुरू किया। कनात के छेद में से मक्खी डालने की तरह वह कुबड़ा एक एक मींगन ब्राह्मण के तालु के अन्दर गिराता रहा। नलिका में तेल डालने की तरह ब्राह्मण जो जो मींगनें आतीं उन्हें निगल जाता। सब खतम हो गईं। उसके पेट में गई नलकी भर बकरी की मींगनें आधे आढ़क[1] भर थीं। राजा ने उन्हें खतम हुआ जान कहा—"आचार्य ! अति बकवादी होने के कारण आपको नलकी भर बकरी की मींगनें निगल जाने पर भी पता नहीं लगा। अब इससे अधिक हजम न कर सकोगे। जाओ कगनी का पानी पीकर इन्हें निकाल अपने को स्वस्थ करो।"

उस दिन से मानो ब्राह्मण का मुख सिल गया। बातचीत करनेवाले के साथ भी बातचीत न करता। 'इसने मुझे कर्ण-सुख दिया है' सोच राजा ने कुबड़े को चारों दिशा में लाख की आमदनी के चार गाँव दिये। बोधिसत्व ने राजा के पास जा 'देव ! बुद्धिमान् आदमी को हुनर सीखना चाहिए। कुबड़े ने केवल कंकर फेंकने (की कला से) भी सम्पत्ति पैदा कर ली' कह, यह गाथा कही—

> साधु खो सिप्पकं नाम अपि यादिसकीदिसं,
> पस्स खञ्जप्पहारेन लद्धा गामा चतुद्दिसा ॥

[जैसा कैसा भी हो, हुनर सीखना अच्छा है। देखो ! कुबड़े ने (मींगनों के) फेंकने (के हुनर) से ही चारों दिशाओं में गाँव पा लिये।]

पस्स खञ्जप्पहारेन, महाराज ! देखो इस कुबड़े ने बकरी की मींगन के निशाना लगाने मात्र से ही चारों दिशाओं में चार गाँव पा लिये। अन्य शिल्पों की महिमा का तो क्या ही कहना—इस प्रकार हुनर सीखने की महिमा का वर्णन किया।

---

[1] १६ पसत = एक आढ़क।

सलीका नहीं था, मजदूरी करती थी। राजाङ्गन में थोड़ी दूर पर जाते हुए उसे शौच की हाजत हुई। जो वस्त्र पहने हुए थी, उसी से शरीर को ढक कर बैठ गई और हाजत रफा कर तुरन्त उठ खड़ी हुई। झरोखे से राजाङ्गण देखते हुए वाराणसी राजा की उस पर नजर पड़ी। वह सोचने लगा—"इस प्रकार के (खुले) प्राङ्गन में बिना लज्जा को छोड़े वस्त्र से ढके ही ढके, शौच फिरकर यह जल्दी से खड़ी हो गई। यह निरोग होगी। इसकी कोख अति परिशुद्ध होगी। परिशुद्ध-कोख से उत्पन्न हुआ पुत्र भी अति पवित्र तथा पुण्यवान् होगा। मुझे चाहिए कि मैं इसे अपनी पटरानी बनाऊँ।"

यह मालूम करके कि वह क्वारी है, राजा ने उसे मँगवाकर अपनी पट-रानी बनाया। वह राजा को प्रिय थी, मन भाती थी। थोड़ी ही देर में उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका वह पुत्र चक्रवर्ती राजा बना।

बोधिसत्त्व ने उसका यह (पुत्र-) धन देख, मौका मिलने पर राजा से कहा—"देव! सीखने योग्य शिल्प क्यों न सीखा जाय? इस पुण्यवान् ने, बिना लज्जा त्यागे, वस्त्र से ढके ही ढके शौच फिर कर तुम्हें प्रसन्न करके इस प्रकार की सम्पत्ति प्राप्त की।" इस प्रकार सीखने योग्य बात को सीखने का महत्त्व बताते हुए यह गाथा कही—

> सिक्खेय्य सिक्खितब्बानि सन्ति सच्छन्दिनो जना,
> बाहियापि सुहन्नेन राजानमभिराधयि ॥

[सीखने योग्य बातों को सीखे। कदरदान लोग हैं। उस मुफलिस की स्त्री ने राजा को ढंग से शौच फिरने (मात्र) से प्रसन्न कर लिया।]

सन्ति सच्छन्दिनो जना, शिल्प-विशेषों में रुचि रखनेवाले लोग हैं। बाहिया—बाहर मुफलिस से पैदा हुई तथा पली स्त्री। सुहन्नेन, बिना लज्जा छोड़े वस्त्र से ढके ढके शौच फिरने को 'सुहन्न' कहते हैं, सो वैसे शौच फिरने से। राजानमभिराधयि देव को प्रसन्न करके, यह सम्पत्ति प्राप्त की।

राजा, राजा के महामन्त्री आदि, और तो और द्वारपाल तक आकर शास्ता को प्रणाम कर उस महादरिद्री से कहने लगे—"भो ! सौ लेकर, दो सौ लेकर या पाँच सौ लेकर हमारा भी हिस्सा रक्खो।" उसने 'शास्ता से पूछकर जानूँगा' सोच शास्ता के पास जाकर यह बात कही। शास्ता ने उत्तर दिया "धन लेकर या बिना लिये जैसे भी हो सब प्राणियों को हिस्सेदार बनाओ।" उसने धन लेना आरम्भ किया। मनुष्यों ने दुगुना, चौगुना, आठ गुना आदि दे देकर नौ करोड़ सोना दिया। शास्ता दानानुमोदन कर विहार चले गये। फिर भिक्षुओं के अपना अपना कर्तव्य करने पर शास्ता ने उन्हें उपदेश दे गन्धकुटी में प्रवेश किया।

शाम को राजा ने उस महादरिद्री को बुलवाया और श्रेष्ठी बना उसका सत्कार किया। धर्म-सभा में भिक्षुओं ने बातचीत चलाई—"आयुष्मानो ! महान् दरिद्री के दिये हुए पूए, शास्ता ने बिना घृणा प्रगट किये ऐसे खाये जैसे अमृत। महान् दरिद्री भी बहुत सा धन और सेठ का पद प्राप्त कर बहुत सम्पत्तिशाली हो गया। शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ ! न केवल अभी मैंने बिना घृणा दिखाये उसके पूए खाये बल्कि पहले जब मैं वृक्ष-देवता था तब भी खाये थे" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य के समय बोधिसत्व अरण्डी के एक वृक्ष पर वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए। उस गाँवड़े के मनुष्य तब देवता-विश्वासी[1] थे। एक त्योहार आने पर उन्होंने अपने अपने वृक्ष-देवताओं को बलि दी। एक दरिद्री मनुष्य ने लोगों को वृक्ष-देवताओं की सेवा करते देख स्वयं एक अरण्ड-वृक्ष की सेवा की। मनुष्य अपने अपने देवताओं के लिये

---

[1] देवता मङ्गलिका, जिनका विश्वास हो कि देवताओं की पूजा करने से कल्याण होगा।

क. वर्तमान कथा

उस समय धर्म-सभा में बैठे हुए भिक्षु बातचीत कर रहे थे—'आयुष्मानो ! देवदत्त पाँच सौ भिक्षुओं को लेकर गयाशीर्ष चला गया। वहाँ जाकर उसने उन भिक्षुओं को कहा कि श्रमण गौतम जो करता है वह धर्म नहीं है बल्कि जो मैं करता हूँ वह धर्म है। इस प्रकार उन्हें अपने मत का बना, यथास्थान झूठा आचरण कर संघ में फूट डाल एक सीमा[1] में दो उपोसथ[2] (-गृह) बना दिए।" यू ये देवदत्त के दोष कह रहे थे। भगवान् ने आकर पूछा—"यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"यह बातचीत।"

"भिक्षुओ ! देवदत्त केवल अभी झूठ बोलनेवाला नहीं। यह पूर्व-जन्म में भी झूठ बोलनेवाला ही रहा है" कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में राजा ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व श्मशान-वन में एक वृक्ष-देवता होकर उत्पन्न हुए। उस समय वाराणसी में नक्षत्र की घोषणा हुई। मनुष्यों ने यक्षों को बलि देने की इच्छा से चौराहों और दूसरे रास्तों पर मत्स्य-मांस आदि बखेर कर खप्परों में शराब रखी।

एक गीदड़ आधी रात के समय चुपके से नगर में दाखिल हुआ। मत्स्य-मांस और शराब पीकर व पुन्नाग-वृक्षों के बीच जाकर सो रहा। सोते सोते सूर्य निकल आया। आँख खोलने पर प्रकाश हुआ देख उसने सोचा—'अब मैं नगर से निकल नहीं सकता।' इसलिए वह रास्ते के पास आकर छिपकर लेट रहा। दूसरे मनुष्यों का आने-जाने देख वह कुछ नहीं बोला, लेकिन एक ब्राह्मण को मुँह धोने के लिए जाते देख उसने सोचा—"ब्राह्मण

---

[1] भौमिक-प्रदेश।

[2] जहाँ भिक्षु एकत्र हो सांघिक-कृत्य करते हैं।

धन के लोभी होते हैं। मैं ऐसा उपाय करूँ कि यह ब्राह्मण मुझे अपनी चादर में लिटा, गोद में ले नगर द्वार से बाहर कर दे।" उसने मनुष्य-भाषा में कहा—"ब्राह्मण।"

ब्राह्मण ने लौटकर कहा—"मुझे कौन बुला रहा है?"

"ब्राह्मण! मैं।"

"किस कारण?"

"ब्राह्मण, मेरे पास दो सौ कार्षापण है। यदि मुझे गोद में ले चादर से ढक जिसमें कोई न देखे, इस प्रकार नगर से निकाल ले, तो मैं तुझे यह कार्षापण दे दूँगा।"

धन के लोभ से ब्राह्मण 'अच्छा' कह स्वीकार कर, उस गीदड़ को वैसे ले नगर से निकल थोड़ा आगे गया। गीदड़ ने पूछा—"ब्राह्मण यह कौन सी जगह है?"

"अमुक जगह।"

"और भी थोड़ा आगे तक ले चल।"

इस प्रकार बार बार कहकर उसे महाश्मशान तक ले जा, वहाँ पहुँचकर कहा—"मुझे यहाँ उतार दे।" ब्राह्मण ने उसे उतार दिया।

"अच्छा तो ब्राह्मण चादर फैला।"

ब्राह्मण ने धन-लोभ से चादर फैला दी।

"तो इस वृक्ष की जड़ में खोदें" कह गीदड़ ब्राह्मण को जमीन खोदने में लगा, उसकी चादर पर चढ़ उसके चारों कोनों तथा बीच में—पाँच जगहों पर पाखाना कर, उसे लथेड़ श्मशान-वन में दाखिल हो गया।

बोधिसत्व ने वृक्ष की शाखा पर खड़े हो यह गाथा कही—

> सद्दहसि सिगालस्स सुरापीतस्स ब्राह्मण,
> सिप्पिकानं सतं नत्थि कुतो कंससता दुवे॥

[ब्राह्मण! तू शराब पिए हुए गीदड़ का विश्वास करता है। उसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं, दो सौ कार्षापण कहाँ होंगे।]

सद्दहसि का सद्दहेसि। इसका मतलब है कि विश्वास करता है।

सिप्पिकानं सतं नत्थि—इसके पास सौ सीपियाँ भी नहीं हैं। कुतो कंससता दुवे दो सौ कार्षापण तो कहाँ होंगे।

बोधिसत्व यह गाथा कह 'हे ब्राह्मण ! जा अपनी चादर धोकर, स्नान करके अपना काम कर' कह अन्तर्ध्यान हो गए।

ब्राह्मण बैसा कर 'हाय ठगा गया' सोचता हुआ चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला, जातक का मेल बैठाया।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। हाँ, वृक्ष-देवता मैं ही था।

११४. मितचिन्ती जातक

"बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो वृद्ध स्थविरो के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उन्होने एक जनपद के जगल में वर्षा-काल बिताकर सोचा कि अब शास्ता के दर्शन के लिए जायेंगे, रास्ते के लिये आवश्यक सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास बिता दिया। फिर दुबारा सामग्री तैयार कर 'आज जाते हैं, कल जाते हैं' करते करते एक मास और बिता दिया। इसी प्रकार अपने आलस्य और निवास-स्थान से मोह होने के कारण तीसरा महीना भी बिता दिया। तीन महीने गुजारकर जेतवन पहुँच, अपने योग्य-स्थान पर पात्र चीवर रख बुद्ध के दर्शनों को गए। भिक्षुओ ने पूछा—"आयुष्मानो ! आप बुद्ध की सेवा मे बहुत दिन के बाद उपस्थित हुए। इतनी देर क्यो हुई ?" उन्होने कारण बताया। उनका यह आलस्य तथा सुस्ती करने

बहुचिन्ती अप्पचिन्ती च उभो जाले अबज्झरे,
मितचिन्ती अमोचेसि उभो तत्थ समागता ॥

[बहुचिन्ती और अल्पचिन्ती दोनो जाल में फँस गए। मितचिन्ती ने दोनो को छुड़ा दिया। वे दोनो उसके साथ आ गए।]

बहुचिन्ती, बहुत चिन्तन करनेवाला होने से अथवा बहुत चिन्तन करने वाला होने से बहुचिन्ती नाम हुआ। बाकी दोनो भी इसी प्रकार हैं। उभो तत्थ समागता, मितचिन्ती के कारण प्राण बचाकर वे दोनो फिर पानी में मितचिन्ती के साथ आ गए।

इस प्रकार शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-) सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। (आर्य-)सत्यों की समाप्ति पर स्थविर स्रोतापन्न हुए।

उस समय के बहुचिन्ती और अल्प-चिन्ती यह दोनो थे, मितचिन्ती मैं ही था।

११५. अनुमासिक जातक

"यायस्सञ्ञमनुसासति [illegible]

क. वर्तमान कथा

[illegible]

दूसरे पक्षी इधर न आयें। वह पक्षियों को उपदेश देती—राज-मार्ग बड़ा खतरनाक है। हाथी, घोड़े और मरखहे बैलोंवाली गाड़ियाँ आती जाती हैं। शीघ्रता से उड़ा भी नहीं जा सकता। वहाँ नहीं जाना चाहिए। पक्षियों ने उसका नाम अनुशासिका रख दिया।

एक दिन वह राजपथ पर चुग रही थी। जोर से आती हुई गाड़ी के शब्द को सुन उसने पीछे मुँह कर देखा। 'अभी दूर है' सोच, चुगती ही रही। हवा के जोर से गाड़ी शीघ्र ही आ पहुँची। वह उड़ न सकी। पहिये में उसके दो टुकड़े हो गए।

बोधिसत्व ने पक्षियों के लौटने पर उनकी गिनती करते समय उसे न देख कर कहा—अनुशासिका दिखाई नहीं देती, उसे खोजो। पक्षियों ने खोज करते हुए, उसे राजपथ पर दो टुकड़े हो पड़े देखा। बोधिसत्व से आकर निवेदन किया। 'वह दूसरों को जाने से रोकती थी लेकिन स्वयं वहाँ चुगने जाकर दो टुकड़े हुई' कह यह गाथा कही—

यायञ्ञमनुसासति सयं लोलुप्पचारिणी,
साय विपक्खिका सेति हता चक्केन साळिका ॥

[जो दूसरों को उपदेश देती थी लेकिन स्वयं थी लोभी, वह यह चिड़िया पहिए के नीचे आकर पंख-रहित होकर मरी पड़ी है।]

यायञ्ञमनुसासतीति, इसमें 'य' केवल दो पदों की सन्धि के कारण है। अर्थ है, जो दूसरों को उपदेश देती है। सयं लोलुप्पचारिणी, अपने लोभी स्वभाव वाली। सायं विपक्खिका सेति, वह पंखरहित होकर राजपथ पर पड़ी है। हता चक्केन साळिका, गाड़ी के पहिये से मारी गई चिड़िया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय उपदेश देनेवाली चिड़िया यह उपदेश देनेवाली भिक्षुणी ही थी। श्रेष्ठ-पक्षी तो मैं ही था।

११६. दुब्बच जातक

"अतिकरमकराचरियमह" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक वचन न माननेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा नवें निपात के गिज्झ जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को बुला, 'भिक्षु, तू केवल अभी ही आज्ञा न माननेवाला नहीं है; पूर्व जन्म में भी ऐसे पण्डितों का कहना न मानने से, शक्ति के प्रहार से जान गँवाई' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने लंघन[2] के घर में जन्म लिया। बड़े होने पर वह बुद्धिमान तथा व्यवहार-कुशल हुआ। वह एक नट से शक्ति लाँघने की कला सीखकर आचार्य के साथ हुनर दिखाते हुए घूमता था। बोधिसत्व का उस्ताद चार ही शक्तियों के लाँघने का हुनर जानता था, पाँच के लाँघने का नहीं।

एक दिन उसने एक गाँव में तमाशा दिखाते समय शराब के नशे में मस्त होकर, 'पाँच शक्तियों को लाँघूंगा' कह उन्हें क्रम से रखा। बोधिसत्व ने कहा—आचार्य, आप पाँच शक्तियों को लाँघने का हुनर नहीं जानते; इसलिए एक शक्ति को हटा दें। यदि पाँचों को लाँघेंगे तो पाँचवीं शक्ति से बिंधकर मरेंगे।

---

[1] गिज्झ जातक—नौवें निपात की पहली जातक।

[2] लंघन=बाजीगर।

११६. दुब्बच जातक

"अतिकरमकराचरिय" यह गाथा शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बात न माननेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा नवें निपात के 'गिज्झ जातक'[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा, 'भिक्षु, तू केवल अभी बात न माननेवाला नहीं है; बल्कि पहले भी तूने पण्डितों का कहना न मानने से शक्ति के प्रहार से जान गँवाई' कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने लंघनट[2] के घर में जन्म लिया। बड़े होने पर वह बुद्धिमान तथा व्यवहार-कुशल हुआ। वह एक नट से शक्ति लाँघने की कला सीखकर आचार्य के साथ हुनर दिखाते हुए घूमता था। बोधिसत्व का उस्ताद चार ही शक्तियों के लाँघने का हुनर जानता था, पाँच के लाँघने का नहीं।

एक दिन उसने एक गामड़े में तमाशा दिखाते समय शराब के नशे में मस्त होकर, 'पाँच शक्तियों को लाँघूँगा' यह उन्हें क्रम से रखा। बोधिसत्व ने कहा—आचार्य, आप पाँच शक्तियों को लाँघने का हुनर नहीं जानते; इसलिए एक शक्ति को हटा दें। यदि पाँचों को लाघेंगे तो पाँचवीं शक्ति से बिधकर मरेंगे।

---

[1] गिज्झ जातक—नौवें निपात की पहली जातक।

[2] लंघनट=बाजीगर।

आगे के दाँत निकालकर मुस्कराई। थेरिगुप्त ने देखा; तो दाँतों की हड्डियाँ उसके लिए ध्यान का विषय हो गईं। उसमें अस्थि-संज्ञा पैदा हुई। उसे वह सारा शरीर हड्डियों के पञ्जर की तरह मालूम देने लगा। उसकी मजदूरी दे, उसने कहा 'जाओ'।

उसके घर से निकलने पर बीच-बाजार में खड़ा देख एक ऐश्वर्यशाली आदमी उसे मजूरी दे अपने घर ले गया। सप्ताह बीतने पर उत्सव समाप्त हुआ। वेश्या की माता ने जब देखा कि लड़की नहीं आई तो वह थेरिगुप्त के पास गई और पूछा कि वह कहाँ है? उन्होंने उत्तर थेरिगुप्त के यहाँ जाकर पूछा कि वह कहाँ है। उसने कहा "उसी समय मजूरी देकर विदा कर दिया।" उसकी माँ रोने लगी। 'मैं अपनी लड़की को नहीं देखती। मेरी लड़की लाओ' कहते हुए वह उत्तर-थेरिगुप्त को ले राजा के पास गई।

राजा ने मुकदमे का फैसला करते हुए पूछा—

"इस थेरिगुप्त ने तुझे वेश्या लाकर दी?"

"देव! हाँ।'

'अब वह कहाँ है?"

नहीं जानता हूँ। उसी समय उसे विदा कर दिया था।"

'अब उसे ला सकता है?"

देव! नहीं सकता हूँ।'

यदि नहीं ला सकता है, तो इसे राजदण्ड दो।"

उसके [illegible] बाँध राजदण्ड देने के लिए उसे पकड़कर ले [illegible] के कारण [illegible] राजदण्ड दे रहा है, [illegible] बतायी! [illegible] हुए [illegible] फिर भी [illegible] यह भी मुझे इस प्रकार [illegible] यदि मैं इससे मुक्त हुआ [illegible]

[illegible] है। [illegible]
[illegible] पुरुषों को देखकर [illegible]
[illegible] पुरुषों के उसे इस [illegible]

रह गया। मनुष्य उसे देखकर नहीं खरीदते थे। बोधिसत्व को छोड़ शेष बटेरों के समाप्त हो जाने पर, चिड़ीमार पिंजरे को ला दरवाजे पर रख (उसमें से) बोधिसत्व को हाथ पर ले देखने लगा कि इस बटेर को क्या हुआ? उसे असावधान देख बोधिसत्व ने पंख फैलाए और उड़कर जंगल जा पहुँचा।

बटेरों ने बोधिसत्व को देखकर पूछा—"पता नहीं रहा कि कहाँ गए थे?"

"मुझे चिड़ीमार ने पकड़ लिया था।" "कैसे मुक्त हुए?" पूछने पर बोधिसत्व ने कहा मैंने उसका दिया हुआ दाना-पानी नहीं ग्रहण किया; और मुक्त होने का तरीका सोचकर छूट गया। (इतना कह) यह गाथा कही—

नाचिन्तयन्तो पुरिसो विसेसमधिगच्छति,
चिन्तितस्स फलं पस्स मुत्तोस्मि वधबन्धना ॥

[जो आदमी विचार नहीं करता, वह विशेष (=मोक्ष) को प्राप्त नहीं होता। विचार करने के फल को देखो मैं मरण-बन्धन से मुक्त हो गया।]

मतलब यह है। पुरिसो, दुःख में पड़कर मैं इस उपाय से मुक्त होऊँगा, इस प्रकार न विचार करने वाला आदमी दुःख से मुक्ति स्वरूप विसेसं नाधिगच्छति। मैंने जो विचार से काम किया, उसके फल को देखो। उसी उपाय से मैं मुत्तोस्मि वधबन्धना, मैं मरण से तथा बन्धन से मुक्त हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्व ने अपनी कृति का बखान किया।

शास्ता ने इस धर्मदेशना को ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मरने से मुक्त हुआ बटेर मैं ही था।

११९. अकालरावी जातक

"अमातापितरि संवद्धो" यह धर्मदेशना शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक असमय शोर करनेवाले भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक श्रावस्ती-निवासी तरुण ने (बुद्ध-) शासन में प्रव्रजित हो न कर्तव्य सीखे न शिक्षा ग्रहण की। वह नहीं जानता था कि इस समय मुझे (झाड़ू लगाना आदि) काम करने चाहिए, इस समय मुझे सेवा के काम करने चाहिए; इस समय पाठ करना चाहिए। पहले याम में भी, बीच के याम में भी और पिछले याम में भी जब जब आँख खुलती, वह शोर करता था। भिक्षुओं को नींद न आती। धर्मसभा में एकत्र हुए भिक्षु उसकी निन्दा करते—"आयुष्मानो! यह भिक्षु इस प्रकार के रत्न[1] शासन में प्रव्रजित हो कर भी, न कर्तव्य जानता है, न शिक्षा जानता है, न समय जानता है और न असमय जानता है।"

शास्ता ने आकर पूछा "भिक्षुओ! इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" "अमुक बातचीत" कहने पर कहा—"भिक्षुओ! यह केवल अभी असमय शोर मचाने वाला नहीं है, पहले भी असमय हल्ला करनेवाला हो गया है। समय असमय न जानने के कारण ही इसकी गरदन मरोड़ी जाकर यह मृत्यु को प्राप्त हुआ।"

इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

---

[1] बुद्ध, धर्म तथा संघ तीन रत्न हैं।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर सयाने होने पर, सब शिल्पों में पारङ्गत हो, चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य बन पाँच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाते (सिखाते) थे। उन शिष्यों के पास समय पर बोलनेवाला एक मुर्गा था। वे उसके बाँग देने पर उठकर शिल्प सीखते थे। वह मर गया। तब वह कोई दूसरा मुर्गा ढूँढते फिरते थे। एक शिष्य ने श्मशान वन में लकड़ी इकट्ठी करते समय एक मुर्गे को देख, उसे लाकर पिंजरे में बन्द कर, पाला। वह श्मशान में बड़ा हुआ होने से यह न जानता था कि किस समय बोलना चाहिए। कभी आधी रात को बोलता कभी अरुण उदय होने पर। शिष्य उसके बहुत रात रहते बोलने पर उसी समय शिल्प सीखना आरम्भ करने के कारण अरुणोदय तक न सीख सकते थे। नींद के मारे सीखा हुआ भी भूल जाते। बहुत प्रभात होने पर बोलने के समय पाठ करने का अवकाश ही न रहता।

शिष्यों ने सोचा, यह या तो बहुत रात रहने पर बोलता है, या बहुत दिन चढ़ने पर। इस (की मदद) से हमारा शिल्प (सीखना) समाप्त न होगा। यह सोच उसकी गर्दन मरोड़ उसे मार डाला। फिर आचार्य के पास जाकर कहा कि हमने असमय शोर मचानेवाले मुर्गे को मार डाला।

आचार्य्य ने कहा कि वह अशिक्षित ही वृद्धि को प्राप्त हुआ था। इसी से मरा। इतना कह यह गाथा कही—

> अमातापितरि संवद्धो अनाचरियकुले वसं,
> नायं कालं अकालं वा अभिजानाति कुक्कुटो॥

[न माता-पिता से शिक्षा ग्रहण करते हुए बड़ा, न आचार्य्य-कुल में ही रहा। यह मुर्गा न समय जानता था, न असमय।]

अमातापितरि संवद्धो, माता पिता के पास उनका उपदेश न ग्रहण करता हुआ बड़ा। अनाचरिय कुले वसं, आचार्य्य कुल में भी न रह कर आचार-शिक्षा न ग्रहण करने के कारण असभ्यमी। कालं अकालं वा इस समय बोलना चाहिए,

उस राजा ने अपनी पटरानी को वर दिया था कि जो इच्छा हो माँग ले। उसने कहा, मुझे और वर दुर्लभ नहीं है, मैं यही चाहती हूँ कि अब इसके बाद आप किसी दूसरी स्त्री को कामुक-दृष्टि से न देखें। राजा ने अस्वीकार कर; लेकिन फिर फिर जोर देने से उसके कथन को अस्वीकृत न कर सकने के कारण स्वीकार कर लिया। उसके बाद राजा ने सोलह हजार नर्तकियों में से किसी एक स्त्री की ओर भी कामुक-दृष्टि से नहीं देखा।

उस समय राजा के इलाके में बगावत फैली। इलाके के योधाओं ने विद्रोहियों (चोरों) के साथ दो तीन लड़ाइयाँ लड़ (राजा के पास) पत्र भेजा कि इसके आगे हम न लड़ सकेंगे। राजा ने वहाँ जाने की इच्छा से सेना एकत्र कर देवी को बुलवाकर कहा—"भद्रे! मैं इलाके में जाता हूँ। वहाँ नाना प्रकार के युद्ध होते हैं। जय-पराजय भी अनिश्चित रहती है। वैसी जगहों में स्त्रियों को साथ ले चल सकना कठिन है। तू यहीं रह।" उसने कहा "देव! मैं यहाँ नहीं रह सकती।" राजा के बार बार मना करने पर बोली 'अच्छा! तो एक एक योजन पर पहुँचकर मेरा कुशल-समाचार जानने के लिए एक एक आदमी भेजना होगा।" राजा ने "अच्छा" कह स्वीकार किया।

बोधिसत्त्व को नगर में छोड़, बड़ी भारी सेना के साथ नगर से निकल राजा जाते हुए एक एक योजन पर एक एक आदमी को भेजता कि जाओ हमारा कुशल समाचार कह रानी के दुःख-सुख की खबर लाओ। वह हर आनेवाले आदमी से पूछती 'राजा ने तुझे किस लिए भेजा है?' 'तुम्हारा कुशल-समाचार जानने के लिए' कहने पर 'तो आओ' कह उससे सहवास करती। राजा ने बत्तीस योजन मार्ग जाते हुए बत्तीस जनों को भेजा। उसने उन सभी के साथ वैसे ही किया। राजा ने इलाके को दबा, लोगों को निश्चिन्त कर लौटते समय भी उसी तरह बत्तीस आदमी भेजे। उसने उन बत्तीसों के साथ भी वैसे ही दुष्कर्म किया।

राजा ने (राजधानी में) पहुँच विजय-पड़ाव[1] पर रुक बोधिसत्त्व को

---

[1] इलाके को जीतकर आने पर नगर से बाहर जो पड़ाव डाला जाता था, उसे 'जय स्कन्धावार' कहते थे।

सूचना भेजी नगर को (स्वागत के लिए) तैयार करे।' बोधिसत्त्व सारे नगर के साथ राज-महल को भी तैयार कराते हुए रानी के निवास-स्थान पर गया। उसने बोधिसत्त्व का सुन्दर शरीर देख संयम न कर सकने के कारण कहा—"आयुष्मन्! शय्या पर आ।" बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया—"ऐसा मत कह। मेरे मन में राजा का गौरव भी है और मैं पाप-कर्म से डरता भी हूँ। मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"उन चौंसठ संदेश-वाहकों को तो न राजा का गौरव था, न वह पाप से डरते थे; तुझे ही राजा का गौरव है और तू ही (एक) पाप से डरनेवाला है?"

"हाँ, यदि उनको भी ऐसा होता, तो वह भी ऐसा न करते। मैं तो जान बूझकर ऐसा दुस्साहस नहीं करूँगा।"

"बहुत क्यों बकवाद करता है; यदि मेरा कहना नहीं करेगा तो तेरा सिर कटवा दूँगी।"

"एक जन्म में सिर की बात क्या, यदि हजार जन्मों में हर बार भी सिर कटे तो भी मैं ऐसा नहीं कर सकता।"

"अच्छा देखूँगी" कह बोधिसत्त्व को डरा रानी अपने कमरे में गई। वहाँ अपने शरीर पर नाखून की खरोंच के निशान बना, बदन पर तेल मल, मैले कुचैले कपड़े पहन बीमारी का बहाना बना कर लेट रही और दासियों को आज्ञा दी कि जब राजा पूछे 'देवी कहाँ है?' तो उत्तर देना 'बीमार है'।

बोधिसत्त्व राजा की अगवानी के लिए गए। राजा ने नगर की प्रदक्षिणा कर प्रासाद पर चढ़ रानी को न देख पूछा—'देवी कहाँ है?' "देव! बीमार है।" राजा ने रानी के कमरे में प्रवेश कर उसकी पीठ मलते हुए पूछा "भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?" रानी चुप रही। तीसरी बार (पूछने पर) राजा की ओर देखते हुए बोली—"महाराज! तुम भी जीते हो? मेरे जैसी स्त्री को भी स्वामी-वाली [illegible] सकता है?"

"भद्रे! क्या बात है?"

"तुमने जिस पुरोहित को नगर की रक्षा का भार सौंप [illegible] के देखने के बहाने से यहाँ आया और [illegible] कहना न मानने [illegible] इन्हें तक [illegible] करके गया।"

जिस प्रकार आग में नमक तथा शक्कर डालने पर चट चट शब्द होता है, उसी प्रकार राजा क्रोध से चटचटाता हुआ रानी के कमरे से निकला और द्वारपालों तथा परिचारकों को बुलवाकर आज्ञा दी—"अरे ! जाओ, पुरोहित की बाहें पिछली तरफ बाँधकर, उसे वध करने योग्य मनुष्य की तरह नगर से बाहर वध करने के स्थान पर ले जा कर उसका सिर काट दो।"

उन्होंने जल्दी से जाकर उसकी बाँहें पिछली तरफ करके बाँध, वध-भेरी बजवा दी। बोधिसत्व ने सोचा "उस दुष्ट देवी ने राजा को पहले से ही फोड़ लिया। अब मैं आज अपने बल से ही अपने को मुक्त करूँगा।" उसने उन लोगों से कहा—

"भो ! तुम मुझे मारते हो, तो एक बार राजा के पास ले चलकर मारना।"

"किस लिए ?"

"मैं राज कर्मचारी हूँ। मैंने बहुत कार्य्य किए हैं। मैं अनेक गड़े हुए खजानों को जानता हूँ। मैं ही राज्य-सम्पत्ति की देखरेख करता रहा हूँ। यदि मुझे राजा को न दिखाओगे, तो बहुत धन का नाश हो जाएगा। मुझे राजा को उसके धन की सूचना दे लेने पर, फिर जो करना हो करो।"

वे उसे राजा के पास ले गए। राजा ने उसे देखते ही कहा—"अरे ब्राह्मण ! तूने मेरी भी शरम नहीं रक्खी ? तूने क्यों ऐसा पापकर्म किया ?"

"महाराज ! मैं श्रोत्रिय कुल में पैदा हुआ हूँ। मैंने कभी च्यूँटी तक की भी जान नहीं ली। मैंने कभी तिनके की भी चोरी नहीं की। मैंने कभी कामुक दृष्टि से किसी की स्त्री की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। मैंने कभी हँसी में भी झूठ नहीं बोला। मैंने कभी कुशाग्र से भी मद्य नहीं पिया। मैंने तुम्हारा कुछ अपराध नहीं किया। उस मूर्खा ने मुझे हाथ से पकड़ा। मेरे इनकार करने पर वह अपना किया पाप प्रगट कर, मुझे कह कमरे में चली गई। मैं निरपराधी हूँ। हाँ पत्र लेकर आनेवाले चौंसठ आदमी अपराधी हैं। देव ! उन्हें बुलवा कर पूछें कि उन्होंने उसका कहना किया अथवा नहीं किया ?"

राजा ने उन चौंसठ जनों को बँधवाकर देवी को बुलवाकर पूछा—"तूने इनके साथ पाप किया या नहीं किया ?"

एक दिन किसी उत्सव के अवसर पर राजा सारे नगर को देवनगर की तरह अलंकृत करा, सब अलंकारों से सजे हुए मंगल हाथी पर चढ़, बड़ी राजकीय शान के साथ नगर में घूमने के लिए निकला। लोग जहाँ तहाँ खड़े होकर मंगल हाथी के अति सुन्दर शरीर को देख मंगल हाथी की ही प्रशंसा करने लगे—"ओह! क्या रूप है! ओह! क्या शान है! ओह! कैसा ढंग है! ओह! कैसे लक्षण हैं! इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ हाथी चक्रवर्ती राजा के योग्य है।"

राजा ने मंगल हाथी की प्रशंसा सुन उसे न सह सकने के कारण, ईर्षा के वशीभूत हो सोचा, "आज ही इसे पर्वत-प्रपात से गिरवा कर मरवा डालूँगा।" फिर हथवान को बुलवाकर पूछा—

"तूने इस हाथी को क्या (खाक) सिखाया है?"

"देव! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"नहीं, अच्छी तरह से नहीं सिखाया, खराब सिखाया है।"

"देव! अच्छी तरह से सिखाया है।"

"यदि अच्छी तरह से सीखा, तो क्या तू इसे वेपुल्ल पर्वत के ऊपर चढ़ा ले जा सकता है?"

"देव! हाँ।"

"अच्छा, तो आ" कह अपने उतर हथवान् को हाथी पर चढ़ा पर्वत के पास जा, हथवान् के हाथी की पीठ पर बैठे ही हाथी को पर्वत के ऊपर चढ़ा ले जाने पर, अमात्यों के साथ स्वयं भी पर्वत के शिखर पर चढ़, हाथी का मुँह प्रपात की ओर करवा कहा—'तू कहता है कि मैंने इसे अच्छी तरह सिखाया है। इसे तीन ही पैरों से खड़ा कर।"

हथवान् ने पीठ पर बैठे ही बैठे हाथी को अंकुश द्वारा इशारा किया, 'भो! तीन पैरों से खड़े हो जाओ।" वह तीन पैरों से खड़ा हो गया। तब राजा बोला—"आगे के दो पैरों के भार खड़ा करो।" बोधिसत्व पिछले दोनों पैर उठाकर अगले पैरों पर खड़े हुए। "पिछले ही पैरों पर" कहने पर आगे के दोनों पैर उठाकर पिछले ही पैरों पर खड़े हो गए। 'एक ही पैर से' भी कहने पर तीनों पैर उठा एक ही पैर से खड़े हो गए। उसे न गिरता देख राजा ने कहा—'यदि कर सको, तो इसे आकाश में खड़ा करो।'

हयवान् ने सोचा सारे जम्बूद्वीप में इसे हाथी के समान सुशिक्षित हाथी नहीं है। निस्सन्देह यह राजा इसे प्रपात में गिरवाकर मरवाना चाहता है। उसने हाथी के कान में कहा—"तात ! यह राजा तुझे प्रपात में गिराकर मार डालना चाहता है। तू इसके योग्य नहीं है। यदि तुझमें आकाश-मार्ग से जाने का बल है, तो जैसे मैं बैठा हूँ वैसे ही मुझे ले आकाश में उड़ बाराणसी चल।"

पुण्य-ऋद्धि से युक्त वह हाथी उसी समय आकाश में खड़ा हो गया। हयवान् ने कहा—'महाराज ! यह हाथी पुण्य-ऋद्धि से युक्त है। यह तेरे जैसे पुण्य-रहित दुर्बुद्धि के योग्य नहीं है। यह (किसी) पुण्यवान् पण्डित राजा के योग्य है। तेरे सदृश अपुण्यवान् इस प्रकार का वाहन पा उसके गुणों को न पहचान उस वाहन को तथा सारी सम्पत्ति को नष्ट ही कर डालते हैं।' इतना कह हाथी के कन्धे पर बैठे ही बैठे यह गाथा कही—

> लद्धान दुम्मेधो अनत्थं चरति अत्तनो,
> अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति ॥

[मूर्ख आदमी सम्पत्ति को प्राप्त हो अपनी हानि करता है। वह अपनी और दूसरों की हिंसा करता है।]

यह अभिप्राय है—महाराज ! इस प्रकार का दुम्मेधो, प्रज्ञाहीन आदमी परिवार-सम्पत्ति पाकर अत्तनो अनत्थं चरति। क्यों ? वह सम्पत्ति के मद में बेहोश हो, कुछ न जानने के कारण अत्तनो च परेसं च हिंसाय पटिपज्जति, हिंसा का अर्थ है कष्ट, दुःख देना, वही करता है।

इस प्रकार इस गाथा से राजा को धर्मोपदेश दे 'अब तू यहीं रह' कह आकाश में उड़कर बाराणसी जाकर राजा के आँगन में आकाश में रुका। सारे नगर में एक हल्ला हो गया—हमारे राजा के पास आकाश से एक श्वेत-श्रेष्ठ हाथी आकर राजा के आँगन पर ठहरा है। जल्दी से राजा को भी खबर दी गई। राजा ने निकलकर कहा—यदि मेरे उपयोग के लिए आया है, तो जमीन पर उतर। बोधिसत्त्व जमीन पर उतरे। हयवान् ने उतरकर राजा को प्रणाम किया। राजा ने पूछा—"तात ! कहाँ से आया है ?" "राजगृह से" कह सब समाचार सुनाया।

राजा बोला—'तात ! तूने आकर मुझे अच्छा किया।' फिर प्रसन्न हो नगर सजवा हाथी को मंगल-हाथी घोषित किया। सारे नगर के तीन हिस्से कर, एक हिस्सा बोधिसत्व को दिया, एक रूपवान् को और एक स्वयं लिया।

बोधिसत्व के आने के समय से ही सारे जम्बूद्वीप का राज्य राजा को हस्त-गत हो गया। वह जम्बूद्वीप का महाराज हो दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मगध नरेश देवदत्त था। वाराणसी का राजा सारिपुत्र था। रूपवान आनन्द था। और हाथी तो मैं ही था।

१२३. नङ्गलीस जातक

"असब्बत्थगामि वाचं" यह (धर्म-देशना) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लालुदायि स्थविर के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

वह धर्मोपदेश देते समय यहाँ यह कहना चाहिए, यहाँ यह न कहना चाहिए, योग्य अयोग्य नहीं जानता था। मङ्गल (दान) कहने की जगह अमङ्गल बात कहकर (दान-) अनुमोदन करता था, जैसे तिरोकुड्डेसु तिट्ठन्ति सन्धि-सिङ्घाटकेसु च[1]। अमङ्गल अनुमोदन करने की जगह वह देवा मनुस्सा च

---

[1] तिरोकुड्ड सुत्त, खुद्दकपाठ (खुद्दक निकाय) की पहली पंक्ति जिसका मतलब है कि प्रेत लोग आकर दीवारों के बाहर, खिड़कियों में और चौरस्तों में खड़े होते हैं।

मङ्गलानि अचिन्तयुं[1] यह 'इस प्रकार के मङ्गल-कार्य सैकड़ों हज़ारों करने का सामर्थ्य पैदा करो' कहता ।

एक दिन धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने चर्चा चलाई—"आयुष्मानो ! लालुदायि उचित अनुचित नहीं जानता । सर्वत्र न कहने योग्य सर्वत्र कहता है ।" शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ ! बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?" "अमुक बातचीत" कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, लालुदायि न केवल अभी अपनी जड़ता के वशीभूत हो बोलता हुआ उचित अनुचित नहीं जानता । पहले भी ऐसा ही था । यह सदा ही मूर्ख रहा ।"

यह कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व एक महाऐश्वर्यशाली ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर तक्षशिला से सब विद्याएँ (शिल्प) सीखकर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हो पाँच सौ शिष्यों को शिल्प सिखाने लगा ।

उस समय उन शिष्यों में एक जड़-मूर्ख शिष्य धम्म-अन्तेवासिक[2] होकर विद्या सीखता था । जड़ता के कारण वह कुछ न सीख सकता था । लेकिन था बोधिसत्त्व की बहुत सेवा करनेवाला । दास की तरह सब काम करता था ।

एक दिन बोधिसत्त्व शाम का भोजन करके लेटे थे । वह विद्यार्थी हाथ, पैर, पीठ दबा कर जा रहा था । बोधिसत्त्व ने कहा—"तात ! चारपाई के पावों को सहारा दे कर जा ।" विद्यार्थी को एक पाँव का सहारा मिला, दूसरे का न मिला । उसने उस एक पाँव को अपनी जाँघ पर कर सारी रात बिता दी । बोधिसत्त्व ने प्रातःकाल उठ उसे देख पूछा—"तात !

---

[1] मङ्गल सूत्र, बहुत से देवताओं और मनुष्यों ने मङ्गलों को सोचा ।

[2] जो शिष्य आचार्य-दक्षिणा देने में असमर्थ होता था, वह आचार्य की सेवा करता हुआ विद्या सीखता था ।

"आचार्य ! आज हमने ऊख खाया।"

"ऊख कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

थोड़ी भीगी बात कहता है, सोच आचार्य चुप रहे। फिर एक दिन निमन्त्रण में कुछ विद्यार्थियों ने दही के साथ गुड़ खाया, कुछ ने दूध के साथ। उसने आकर कहा—आज ! हमने दही दूध के साथ खाया।

"दूध दही कैसा होता है ?"

"हल की फाल की तरह।"

आचार्य ने सोचा—इस विद्यार्थी ने साँप की हल की फाल से उपमा दी; सो तो ठीक रहा। हाथी की हल की फाल से उपमा दी, वह भी सूंड का ख्याल करके कहा, इसमें कुछ ठीक रहा। ऊख को हल की फाल के सदृश कहा, उसमें भी और कुछ ठीक है। लेकिन दूध दही तो सफेद होते हैं, जैसा बर्तन होता है वैसा ही उनका आकार हो जाता है। यहाँ तो उपमा सर्वथा गलत है। इस मूर्ख को न सिखा सकूँगा। यह कह, यह गाथा कही—

> असब्बत्थगामिं वाचं
> बालो सब्बत्थ भासति,
> नायं दधिं वेदि न नङ्गलीसं
> दधिप्पयं मञ्ञति नङ्गलीसं ॥

[मूर्ख सब जगह ठीक न बैठने वाली बात सब जगह कहता है। न यह दही को जानता है, न हल के फाल को। यह दही को भी हल की फाल समझता है।]

[illegible] —[illegible] सर्वत्र लागू नहीं होती, वह [illegible] बालो सब्बत्थ भासति। दही कैसा होता है [illegible]। [illegible] न नङ्गलीसं [illegible] दधिप्पयं मञ्ञति नङ्गलीसं, यह दही को भी हल की फाल समझता है [illegible]। [illegible] दूध को [illegible] दही और दूध को भी हल की फाल समझता है,

लोगों ने उसकी कर्तव्य-निष्ठा पर प्रसन्न हो, उसे पाँच सौ स्थिर निमन्त्रण दिए। बहुत लाभ-सत्कार की प्राप्ति हुई। उसके कारण बहुतों को सुख मिला। धर्मसभा में बैठे हुए भिक्षुओं ने बात चलाई—आयुष्मानो! उस भिक्षु ने अपनी कर्तव्य-निष्ठा से बहुत लाभ-सत्कार प्राप्त किया। इस एक के कारण बहुतों को सुख मिला।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'यह बातचीत' कहने पर "भिक्षुओ, केवल अभी नहीं, पहले भी यह भिक्षु कर्तव्य-निष्ठ रहा है। इस अकेले के कारण पाँच सौ ऋषि फल-फूल के लिए न जाकर इस एक के द्वारा मँगवाए गए फलों से ही गुजारा चलाते रहे हैं।" यह कह पूर्वजन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उदीच्य ब्राह्मण कुल में पैदा हो सयाने होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो पाँच सौ ऋषियों के साथ पर्वत के नीचे रहने लगे। उस समय हिमालय प्रदेश में बड़ी गर्मी पड़ी। जहाँ तहाँ पानी सूख गया। पशु पानी न मिलने से कष्ट पाने लगे।

उन तपस्वियों में से एक तपस्वी ने उन (पशुओं) के प्यास-कष्ट को देख एक वृक्ष काट, उसमें से एक द्रोणि बना, पानी उलीच कर द्रोणि भर, उन्हें पानी दिया। बहुत से पशुओं के इकट्ठे होकर पानी पीने लगने पर तपस्वी को फल-मूल लाने के लिए जाने का समय न मिला। वह निराहार रहकर भी पानी पिलाता ही रहा।

पशुओं ने सोचा यह हमें पानी पिलाने के कारण फल-मूल के लिए जाने का समय नहीं पाता। निराहार रहने के कारण बहुत कष्ट पाता है। हम लोग एक निर्णय करें। उन्होंने सलाह की कि इसके बाद जो पानी पीने आए वह अपनी सामर्थ्य के अनुसार कुछ फल-मूल अवश्य लाए।

उसके बाद प्रत्येक पशु अपनी अपनी शक्ति के अनुसार मीठे मीठे आम, जामुन, कटहल आदि अवश्य लाता। उसके लिए लाया हुआ फल ढाई गाड़ियाँ भर होता। पाँच सौ तपस्वी उसे ही खाते। अधिक होता, छोड़ देते।

१२५. कटाहक जातक

"बहुम्पि सो विकत्थेय्य...." यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक शेखी बघारने वाले भिक्षु के बारे में कहा। उसकी कथा पूर्वोक्त सदृश ही है[1]।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व महाधनशाली सेठ हुए। उसकी भार्य्या ने पुत्र को जन्म दिया। उसकी दासी ने भी उसी दिन पुत्र उत्पन्न किया। वे दोनो साथ साथ बढ़ने लगे। सेठ के लड़के के लिखना सीखने समय, दास ने भी उसकी तख्ती ढोते हुए जाकर उसी के साथ लिखना सीखा, गिनना सीखा। दो तीन भाषाएँ (बोहार) सीखीं। क्रम से बढ़कर वह वचन-कुशल, भाषाविद्, सुन्दर तरुण हुआ। उसका नाम था कटाहक।

सेठ के घर में भण्डारी का काम करते हुए वह सोचने लगा कि यह लोग मुझसे हमेशा भण्डारी का काम नहीं लेंगे। कुछ भी दोष देखेंगे, तो ताड़ेंगे, बाँध कर दाग देंगे और दास बनाकर काम लेंगे। इलाके में सेठ का मित्र एक सेठ है। क्यों न मैं सेठ की तरफ से एक चिट्ठी लेकर, वहाँ पहुँच 'मैं सेठ का लड़का हूँ' कह उस सेठ को धोखा दे, उसकी लड़की से शादी कर सुखपूर्वक रहूँ।

उसने कागज ले उस पर अपने ही लिखा—मैं अमुक नाम का (सेठ) अपने पुत्र को तुम्हारे पास भेजता हूँ। मेरा तुम्हारे और तुम्हारा मेरे साथ

---

[1] भीमसेन जातक (८०)।

में अपना दासत्व प्रगट कराकर मत पछताना, यही यही सेठ के कहने का मतलब है।

सेठ की लड़की यह सब नहीं जानती थी। वह जैसे सीखा था वैसे शब्द-मात्र कहती थी।

कटाहक ने सोचा, निश्चय से सेठ ने मेरा नाम बनाकर इसे सब कह दिया होगा। उसके बाद से फिर उसकी भोजन की निन्दा करने की हिम्मत न हुई। मान-मर्दित होकर वह यथा-प्राप्त भोजन करता हुआ कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय कटाहक बकवादी भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१२६. असिलक्खण जातक

"तथेवेकस्स कल्याणं" यह (धर्मोपदेश) शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोशल-नरेश के तलवार के लक्षण कहनेवाले ब्राह्मण के बारे में दिया।

क. वर्तमान कथा

वह (ब्राह्मण) राजा के पास लोहारों के तलवार लाने के समय तलवार को सूँघकर तलवार का लक्षण बताता था। जिनके हाथ से कुछ प्राप्त हो जाता उन की तलवार को वह सुलक्षण और माङ्गलिक कहता, जिनके हाथ से कुछ न मिलता उनकी तलवार को अमाङ्गलिक बता निन्दा करता।

एक शिल्पी तलवार बना उसके म्यान में मिर्चों का बारीक चूर्ण भर राजा के पास तलवार लाया। राजा ने ब्राह्मण को बुलवाकर कहा—तलवार की परीक्षा करें।

शास्ता ने इस धर्मोपदेश द्वारा लोक में जो बहुत भी अच्छी बुरी मान्यताएँ हैं उन सबका अनैकान्तिक होना प्रकाशित करके जातक का मेल बैठाया।

उस समय का हलवार के समान पढ़नेवाला तो यह भव का सरदार के समान पढ़नेवाला ही था। हाँ मानता-राजा मैं ही था।

१२७. कलण्डुक जातक

"ते देसा तानि वत्थूनि..." यह (धर्मदेशना) शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक बकवादी भिक्षु के बारे में कही। दोनों कथाएँ (अतीत कथा तथा वर्तमान कथा) कटाहक जातक[1] की कथा की तरह ही हैं।

हाँ, इस जातक में वाराणसी के सेठ का नाम कलण्डुक था। उसके भाग कर प्रत्यन्त सेठ की लड़की से विवाह कर बड़े ठाट-बाट के साथ रहने के समय, वाराणसी के सेठ के उसे ढुँढ़वाने पर भी उसके न मिलने पर, वाराणसी सेठ ने अपना पाला-पोसा एक तोते का बच्चा भेजा कि जा कलण्डुक को खोज। तोते का बच्चा इधर-उधर घूमता हुआ उस नगर में पहुँचा।

उस समय कलण्डुक जल-क्रीड़ा करने की इच्छा से बहुत सारे माला-गन्ध-विलेपन तथा खाद्य-भोज्य ले नदी पर जा सेठ कन्या के साथ एक नौका पर बैठ पानी में खेलता था। उस देश में ऐश्वर्यशाली लोग जब जल-क्रीड़ा करते तो कोई तेज औषध मिला हुआ दूध पीते थे। उससे उनके सारा दिन भी जल में क्रीडा करते रहने पर उन्हें शीत नहीं लगता था। यह कलण्डुक उस दूध से मुँह भर उससे कुल्ला कर उसे थूक देता, लेकिन उसे जल में न थूककर उस सेठ-कन्या के सिर पर थूकता था।

---

[1] कटाहक जातक (१२५)।

सेठ बोला—उसने अनुचित किया। और आज्ञा दे उसे वाराणसी मँगवा
दास बनाकर रखा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का
कलण्डुक यह भिक्षु था। वाराणसी सेठ तो मैं ही था।

१२८. बिळारवत जातक

"यो वे धम्मं धजं कत्वा..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने उसके ढोंग की चर्चा चलने पर 'भिक्षुओ, केवल अब ही नहीं; पहले भी यह ढोंगी ही रहा है' कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने चूहे का जन्म ग्रहण किया। बड़े होने पर वह बढ़कर सूअर के बच्चे की तरह हो अनेक सौ चूहों के साथ जंगल में रहने लगा।

इधर उधर घूमते हुए एक शृगाल ने उस चूहों के समूह को देखकर सोचा कि इन चूहों को ठगकर खाऊँगा। यह सोच वह चूहों के बिल से थोड़ी ही दूर पर सूर्याभिमुख हो, मुँह खोल हवा पीते हुए की तरह एक ही पाँव से खड़ा हुआ।

इधर उधर भोजन के लिए घूमते हुए बोधिसत्व ने उसे देख सोचा यह सदाचारी होगा और उसके पास आकर पूछा—

सदाचारी है, ऐसा विश्वास पैदा करके बिळार नाम से व्रत, इस प्रकार धर्म की ध्वजा बनाकर छिपकर पाप करनेवाले का व्रत ढोंग कहलाता है।

चूहों के राजा ने इस प्रकार कहते ही कहते उछलकर उसकी गरदन पर चढ़, ठोडी के नीचे की अन्दर की गले की नाली को डसकर गले की नली को फाड़ मार डाला। चूहों के दल ने रुक कर शृगाल को मुर मुर करके खा डाला। पहले आए हुओं को ही शृगाल का मांस मिला, पीछे आए हुओं को नहीं मिला। उसके बाद से चूहों का दल निर्भय हो गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का शृगाल यह ढोंगी भिक्षु था। चूहों का राजा तो मैं ही था।

१२९. अग्गिक जातक

"नायं सिखा पुञ्ञहेतु..." यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी भिक्षु के ही बारे में कही—

ख. अतीत कथा

पुराने समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व चूहों के राजा हो जंगल में रहते थे।

एक शृगाल जंगल में आग लगने पर जब भागने में असमर्थ रहा, तो एक वृक्ष से सिर टिकाकर खड़ा हो गया। उसके सारे शरीर के बाल जल गए। वृक्ष से लगे हुए सिर पर शिखा की तरह से कुछ बाल बच गए। उसने एक दिन एक पर्वतीय तालाब में पानी पीते हुए अपनी छाया के साथ शिखा को देखकर सोचा अब मुझे पूँजी मिल गई। फिर जंगल में घूमते हुए चूहों के बिल

न खा पाएगा। अथवा हमारे साथ तुम्हारा रहना बन्द हुआ; अब हम तेरे साथ न बसेंगे। शेष पहले ही की तरह से है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय भी शृगाल यही भिक्षु था। वहाँ का राजा तो मैं ही था।

१३०. कोसिय जातक

"यथावाचाव भुञ्जस्सु..." यह (गाथा) शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रावस्ती-निवासी एक स्त्री के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक श्रद्धालु ब्राह्मण उपासक की ब्राह्मणी थी; बहुत दुश्चरित्र, पापिन। रात को दुराचार करती। दिन में कुछ न कर रोग का बहाना बना बड़बड़ाती हुई लेट रहती।

वह ब्राह्मण उससे पूछता—"भद्रे! तुझे क्या कष्ट है?"

"मुझे वायु बींधती है।"

"तो तुझे क्या क्या चाहिए?"

"चिकने, मीठे, अच्छे, स्वादिष्ट यागु-भात-तैल आदि।"

जो जो वह इच्छा करती, ब्राह्मण ला लाकर देता। दास की तरह सब काम करता। लेकिन वह ब्राह्मण के घर आने के समय लेट रहती, बाहर जाने के समय जारों के साथ गुजारती। ब्राह्मण सोचता कि इसके शरीर में चुभनेवाली वायु का अन्त ही होता दिखाई नहीं देता।

एक दिन वह गन्ध माला आदि ले जेतवन जा शास्ता की वन्दना तथा पूजा

प्रहार लगाकर, केशों से पकड़कर, खींचकर कोहनी से पीटना। उसी समय उठकर वह काम करने लगेगी।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर वचनानुसार औषधि बना कहा—भद्रे ! यह औषधि पी।'

"यह औषधि तुझे किसने कही ?"

"आचार्य्य ने, भद्रे !"

"इसे ले जाओ, नहीं पीऊँगी।"

ब्राह्मण ने कहा, तू स्वेच्छा से नहीं पीएगी। रस्सी लेकर बोला, या तो रोग के अनुसार दवाई पी अथवा यवागु-भात के अनुसार काम कर।

इतना कह यह गाथा कही—

> यथावाचाव भुञ्जस्सु यथाभुत्तञ्च ब्याहर,
> उभयं ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये॥

[जैसे कहती है, वैसे दवाई पी, अथवा जैसे खाती है वैसे काम कर। कोसिये ! तेरी वाणी और तेरे भोजन का मेल नहीं बैठता।]

यथावाचाव भुञ्जस्सु जैसे तू कहती है वैसे खा। तू कहती है कि मुझे वात बाँधता है तो उसके अनुसार खा। यथा वाचं वा, यह भी पाठ ठीक बैठता है। यथा वाचाय, यह भी पाठ है। अर्थ सर्वत्र यही है। यथा भुत्तञ्च ब्याहर, जैसे खाया है उसके अनुसार काम कर। 'मैं अरोगी हूँ' कहके घर के काम कर। यथाभुत्तञ्च, यह भी पाठ है। मैं निरोग हूँ यह सत्य बात कहकर भी काम कर। उभय ते न समेति वाचा भुत्तञ्च कोसिये, यह जो तेरी वाणी है कि मुझे वात बाँधता है और यह जो तू अच्छे अच्छे भोजन खाती है, यह दोनों तेरे लिए ठीक नहीं हैं। इसलिए उठकर काम कर। कोसिये, उसे गोत्र से सम्बोधन करता है।

ऐसा कहने पर कोसिय ब्राह्मणी ने सोचा कि अब आचार्य्य का ध्यान आकृष्ट होगया है। अब मैं इसे धोखा नहीं दे सकती। अब मैं उठकर काम करूँगी। वह उठकर काम करने लगी। आचार्य्य ने मेरी दुश्चरित्रता जान

पहला परिच्छेद

१४. असम्पदान वर्ग

१३१. असम्पदान जातक

"असम्पदानेनितरीतरस्स..." यह (गाथा) शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय भिक्षु धर्मसभा में बैठे बातचीत कर रहे थे—आयुष्मानो! देवदत्त अकृतज्ञ है। तथागत के सद्गुणों को नहीं जानता। शास्ता ने आकर पूछा—

"भिक्षुओ! अब बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, देवदत्त केवल अभी अकृतज्ञ नहीं है, पहले भी अकृतज्ञ ही रहा है।"

—इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में मगधदेश के राजगृह नगर में किसी मगधनरेश के राज्य करते समय बोधिसत्त्व उस (राजा) के ही सेठ थे। उनके पास अस्सी करोड़ धन था। नाम था सङ्खसेठ। वाराणसी में भी पिळिय सेठ नामक सेठ था। उसके पास भी अस्सी करोड़ धन था। वे दोनों परस्पर मित्र थे।

उनमें से वाराणसी के पिळिय सेठ को किसी कारण से कोई खतरा आ पड़ा। तमाम जायदाद नष्ट हो गई। वह दरिद्र हो गया। आश्रयरहित

बोधिसत्व ने सोचा—यह अकृतज्ञ मेरे हाथ से चालीस करोड़ धन पाकर अब तुम्बा भर भूसा दे रहा है। इसे लूँ अथवा न लूँ? उसे विचार हुआ—यह तो अकृतज्ञ है, मित्रद्रोही है, कृत उपकार को भुलाकर इसने मेरे साथ मैत्री-सम्बन्ध तोड़ डाला है। यदि मैं इसका दिया तुम्बा भर भूसा बुरा होने के कारण नहीं ग्रहण करता हूँ, तो मैं भी मैत्री सम्बन्ध को तोड़नेवाला होता हूँ। इसलिए मैं इसके दिए तुम्बा भर भूसे को ग्रहण कर अपनी ओर से मैत्री-भाव की प्रतिष्ठा करूँगा।

उसने तुम्बा भर भूसे को अपने पल्ले में बाँध लिया और महल से उतर शाला को गया।

स्त्री ने पूछा—आर्य्य, तुम्हें क्या मिला?

"भद्रे! हमारे मित्र पिळिय सेठ ने हमें तुम्बा भर भूसा दे आज ही बिदा कर दिया।"

उसने रोना आरम्भ किया—आर्य्य! इसे लिया ही क्यों? क्या चालीस करोड़ धन का बदला यही है?

बोधिसत्व ने कहा—भद्रे, रो मत। मैंने अपनी ओर से मैत्री-सम्बन्ध न टूटने देने के लिए, अपनी ओर से उसे बनाए रखने के लिए ग्रहण किया है। तू क्यों सोच करती है।

—इतना कह यह गाथा कही—

असम्पदानेनितरीतरस्स
बालस्स मित्तानि कली भवन्ति,
तस्मा हरामि भुसं अड्ढमानं
मा मे मित्ति जीयित्थ सस्सतायं॥

[ऐसी वैसी वस्तु स्वीकार न करने से मूर्ख आदमी के मित्र मित्र नहीं रहते। इसीलिए मैं अर्धमान भूसा ले आया हूँ। मेरा मैत्री-सम्बन्ध न टूटे। वह शाश्वत बना रहे।]

असम्पदानेन, परस्पर का लोप होकर सन्धि हुई है, अर्थ है ग्रहण न करने से। इतरीतरस्स, जिस किसी अच्छी बुरी चीज के। बालस्स मित्तानि कली भवन्ति, मूढ़, अप्रज्ञावान् के मित्र स्खलित हो जाते हैं, मनहूस से हो जाते हैं,

गाने बजाने के शब्द से सारा राजभवन ऐसा गूंज गया जैसे मेघ के शब्द से महासमुद्र की कोख भर जाए।

तब बोधिसत्त्व को विचार हुआ—यदि मैं उन यक्षिणियों के बनाए हुए दिव्य-रूप को देखता तो मैं मृत्यु को प्राप्त होता और मुझे यह वैभव न देखना मिलता। प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार चलने से मुझे इसकी प्राप्ति हुई। इस प्रकार सोच उल्लास-वाक्य कहते हुए यह गाथा कही—

> कुसलूपदेसे धितिया दळ्हाय च
> अनिवत्तितत्ताभयभीरुताय च,
> न रक्खसीनं वसमागमिम्हा
> स सोत्थिभावो महता भयेन मे ॥

[सदुपदेश पर दृढ़ता पूर्वक स्थिर रहने से, तथा भय भीरुता को मन में स्थान न देने से हम राक्षसियों के वश में नहीं आए। मैं बड़े भारी भय से बच गया (सकुशल रहा)।]

कुसलूपदेसे, समर्थ लोगों के उपदेश से, प्रत्येक-बुद्धों के उपदेशानुसार (चलकर)। धितिया दळ्हाय च, दृढ़ धृति से या स्थिर अखण्डित धैर्य्य से। अनिवत्तितत्ताभयभीरुताय च, भय-भीरुता को मन में स्थान न देने से, भय कहते हैं चित्त का डर मात्र और भीरुता शरीर को कँपा देनेवाला भय। यह दोनों बोधिसत्त्व को यह देखकर भी कि यक्षिणियाँ मनुष्यों को खा जाती हैं—इस भय के कारण के उत्पन्न होने पर भी नहीं हुए। इसी लिए कहा है अनिवत्तितत्ताभयभीरुताय च। भयभीरुता के न होने से अर्थात् भयभीरुता का कारण उपस्थित होने पर भी पीछे न लौटने से। न रक्खसीनं वसमागमिम्हा, यक्ष-कान्तार में उन राक्षसियों के वश में नहीं आया। क्योंकि सदुपदेश में हमारी स्थिति स्थिर और दृढ़ थी। भयभीरुता के न होने से पीछे न लौटने वाले हुए; इसलिए राक्षसियों के वश में नहीं आए—यही भाव है। स सोत्थि भावो महता भयेन मे, सो आज मुझे इस बड़े भारी भय से, राक्षसियों से प्राप्त होनेवाले दुःख दौर्मनस्य से छुटकारा मिला, कल्याण हुआ, प्रीतिसौमनस्य भाव पैदा हुआ।

इस प्रकार बोधिसत्व इस गाथा से धर्मोपदेश कर धर्मानुसार राज्य कर दानादि पुण्य करते हुए कर्मानुसार परलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। मैं उस समय तक्षशिला जाकर राज्य प्राप्त करनेवाला कुमार था।

१३३. घतासन जातक

"खेमं यहिं..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह भिक्षु बुद्ध से कर्मस्थान ग्रहण कर प्रत्यन्त देश में जा एक गाँव के पास एक आरण्यक निवासस्थान में रहने लगा। पहले ही महीने में जब वह भिक्षा माँगने गया था, उसकी पर्णकुटी में आग लग गई। निवासस्थान के अभाव में कष्ट पाते हुए उसने उपस्थायकों से कहा। वे बोले—'अच्छा, भन्ते पर्णशाला बनाएँगे। अभी तो हल जोत रहे हैं। अभी बो रहे हैं; इस प्रकार कहते कहते उन्होंने तीन महीने बिता दिए।'

निवासस्थान की अनुकूलता न होने से वह भिक्षु कर्मस्थान को पूरा नहीं कर सका। उसे निमित्त[1] तक प्राप्त नहीं हुआ। वर्षावास की समाप्ति पर वह जेतवन गया और वहाँ शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने उसके साथ बातचीत करते हुए पूछा—क्यों भिक्षु! तेरा कर्मस्थान सफल

---

[1] ध्यान के विषय (object) का आँख बन्द कर लेने पर दिखाई देने वाला आकार।

हुआ ? उसने आरम्भ से लेकर प्रतिकूलता की सब बात कही। शास्ता ने कहा—भिक्षु ! पूर्व समय में जानवरों ने भी अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता देख, अनुकूल रहने पर उस जगह रह, प्रतिकूल प्रतीत होने पर उसे छोड़ दिया और दूसरी जगह चले गए। तू ने क्यों अपनी अनुकूलता प्रतिकूलता न समझी ? फिर उसके पूछने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व पक्षी होकर पैदा हुए। बड़े होने पर सौभाग्यशाली पक्षि-राजा हो एक जंगल में एक तालाब के किनारे शाखा-प्रशाखाओं से युक्त तथा बहुत पत्तोंवाले एक महान्-वृक्ष पर अनेक अनुचरों सहित रहने लगे। बहुत से पक्षी पानी पर फैली हुई शाखाओं पर रहते हुए अपनी बीट पानी में गिरा देते थे।

उस तालाब में एक प्रचण्ड नाग-राज रहता था। उसके मन में आया कि यह पक्षिगण मेरे निवासस्थान तालाब में बीट गिराते हैं। मैं पानी में से आग पैदा कर इस वृक्ष को जला इन्हें यहाँ से भगाऊँ। उसने क्रुद्ध हो रात को जिस समय सब पक्षिगण इकट्ठे हो वृक्ष की शाखाओं पर सो रहे थे, पहले चूल्हे पर रक्खे पानी की तरह बुलबुले पैदा कर, दूसरी बार धुआँ उठा, तीसरी बार ताड़ के वृक्ष जितनी ऊँची ज्वाला उठाई। बोधिसत्व ने कहा—"पक्षिगण ! आग से जलने पर पानी से बुझाया जाता है, लेकिन अब पानी ही जलने लगा है इसलिए यहाँ नहीं रह सकते। अन्यत्र चलें।" इतना कह, यह गाथा कही—

> खेमं यहिं तत्थ अरी उदीरितो
> उदकस्स मज्झे जलते घतासनो,
> न अज्ज वासो महिया महीरुहे
> दिसा भजव्हो सरणज्ज नो भयं ॥

[जहाँ कल्याण था, वहीं शत्रु पैदा हो गया। पानी में आग जलने लगी। आज पृथ्वी से उगे वृक्ष पर रहना नहीं होगा। (किसी दूसरी) दिशा को चलो। जिस जगह हम ने शरण ली थी वहीं से भय पैदा हो गया।]

दिया—नेवसञ्ञानासञ्ञी. . . .तपस्वियों को ज्येष्ठ-शिष्य की बात समझ में नहीं आई। बोधिसत्व ने आभास्वर (-लोक) से आ आकाश में ठहर यह गाथा कही—

> ये सञ्ञिनो तेपि दुग्गता
> येपि असञ्ञिनो तेपि दुग्गता,
> एतं उभयं विवज्जय
> तं समापत्तिसुखं अनङ्गणं ॥

[जो सञ्ज्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। जो असञ्ज्ञि हैं, उनकी भी दुर्गति है। इन दोनों को छोड़कर समापत्ति सुख दोष रहित है।]

ये सञ्ञिनो, नेवसञ्ञानासञ्ञी प्राणियों को छोड़ शेष चित्त वाले प्राणियों से मतलब है। तेपि दुग्गता, उस समापत्ति के न होने से वह भी दुर्गति-प्राप्त हैं। येपि असञ्ञिनो, असञ्ञा-भव में पैदा होनेवाले चित्त-रहित प्राणियों से मतलब है। तेपि दुग्गता, वे भी इसी समापत्ति को प्राप्त किए न रहने से दुर्गति-प्राप्त हैं। एतं उभयं विवज्जय। इन दोनों सञ्ज्ञि-भाव तथा असञ्ज्ञिभाव को छोड़, त्याग—यह शिष्यों को उपदेश देता है। तं समापत्ति सुखं अनङ्गणं—नेवसञ्ञानासञ्ञायतन को प्राप्त करने वालों के शान्त होने के कारण उसे सुख कहा, ध्यान सुख अङ्गण-रहित, दोष रहित होता है। चित्त की बहुत एकाग्रता होने से भी वह अङ्गण-रहित कहलाया।

इस प्रकार बोधिसत्व ने धर्मोपदेश दिया। फिर शिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गए। तब बाकी के तपस्वियों की ज्येष्ठ-शिष्य के प्रति श्रद्धा बढ़ी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठ-शिष्य सारिपुत्र था, महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३५. चन्दाभ जातक

"चन्दाभं...", यह (गाथा) भी शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कङ्कुस्स नगर के द्वार पर स्थविर की प्रश्न-की-व्याख्या के ही बारे में कही—

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ने एकांत जंगल में मृत्यु को प्राप्त होने के समय शिष्यों के पूछने पर चन्दाभं सुरियाभं कहा। वह मरकर आभस्वर लोक में उत्पन्न हुए। तपस्वियों ने ज्येष्ठ-शिष्य की बात पर विश्वास नहीं किया। बोधिसत्व ने आकर आकाश में उपस्थित हो यह गाथा कही—

> चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्ञाय गाधति,
> अवितक्केन झानेन होति आभस्सरूपगो॥

[जो प्रज्ञा से सूर्याभा तथा चन्द्राभा पर स्थिर होता है। वह वितर्क-रहित ध्यान से आभस्वर-लोक में उत्पन्न होता है।]

चन्दाभं का मतलब है श्वेत-कसिण। सुरियाभं का पीत-कसिण। योध पञ्ञाय गाधति, जो आदमी इस संसार में इन दोनों कसिणों की प्रज्ञा से भावना करता है, उन्हें आलम्बन बनाकर उनमें प्रवेश करता है, उनमें प्रतिष्ठित होता है। अथवा चन्दाभं सुरियाभञ्च योध पञ्ञाय भावति, जहाँ तक सूर्य तथा चन्द्रमा की आभा फैली है, उस सारे स्थान में परिभाग-कसिण[1] को बढ़ाकर उसी को आलंबन बनाकर ध्यान का अभ्यास करनेवाला दोनों आभाओं की प्रज्ञा से भावना करता है। इसलिए यह भी ठीक अर्थ है। वितक्केन झानेन होति

---

[1]परिभाग-कसिण=पटिभाग निमित्त (अभिधम्मत्थ संगहो ६।१८)

मामस्सरूपगो, यह मनुष्य वैसा अभ्यास करने से द्वितीय-ध्यान को प्राप्त हो आभस्वर-ब्रह्मलोक को प्राप्त होता ही है।

इस प्रकार बोधिसत्व तपस्वियों को समझाकर तथा ज्येष्ठ शिष्य की प्रशंसा कर ब्रह्मलोक गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय ज्येष्ठ शिष्य सारिपुत्र थे और महाब्रह्मा तो मैं ही था।

१३६. सुवण्णहंस जातक

"*य लद्ध तेन तुट्ठब्बं...*", यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय थुल्ल नन्दा भिक्षुणी के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में एक उपासक ने भिक्षुणी संघ को लहसुन लेने का निमन्त्रण दिया और अपने खेत वाले को आज्ञा दी कि यदि भिक्षुणियाँ आएँ तो एक एक भिक्षुणी को दो तीन गाठ लहसुन दे। उसके बाद से भिक्षुणियाँ उसके घर भी और खेत पर भी लहसुन के लिए आने लगीं।

एक उत्सव के दिन उस (उपासक) के घर में लहसुन समाप्त हो गया। थुल्लनन्दा भिक्षुणी औरों को साथ ले घर गई और बोली—आयुष्मानो, लहसुन की आवश्यकता है।

—आर्ये, लहसुन नहीं है। लाया हुआ समाप्त हो गया। खेत पर जाएँ।

वह खेत पर गई और बेअंदाज लहसुन लिवा लाई।

खेत वाला खीझा—यह क्या है कि भिक्षुणियाँ अन्दाज न कर बे अदाज लहसुन ले जाती हैं।

ब्राह्मणी और लड़कियों ने बोधिसत्व को देखकर पूछा—स्वामी, कहाँ से आए ?

"मैं तुम्हारा पिता हूँ । मरकर स्वर्ण-हंस होकर पैदा हुआ हूँ । तुम्हें देखने के लिए आया हूँ । इसके बाद तुम्हें दूसरों की मजदूरी करते हुए कष्ट-पूर्वक जीवन-यापन करने की जरूरत नहीं है । मैं तुम्हें अपना एक एक पर दिया करूँगा । उसे बेच-बेच कर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करना ।"

इतना कह वह एक पर देकर उड़ गया । इसी प्रकार वह बीच बीच में आकर एक एक पर देता । ब्राह्मणियाँ धनी और सुखी हो गईं ।

एक दिन उस ब्राह्मणी ने लड़कियों से बुलाकर सलाह की—'अम्म ! जानवरों के दिल का पता नहीं । हो सकता है कि कभी तुम्हारा पिता न आए । इसलिए उसके इस बार आने पर हम उसके सभी पर उखाड़ लें ।'

उन्होंने अस्वीकार किया । वे बोलीं—इस प्रकार हमारे पिता को कष्ट होगा ।

ब्राह्मणी ने लालची होने के कारण फिर एक दिन स्वर्ण-राजहंस के आने पर कहा—स्वामी आएँ ।

जब उसने देखा कि वह उसके पास आ गया है, तो दोनों हाथों से पकड़कर उसके सब पर नोच लिए । सभी पर बोधिसत्व की इच्छा के बिना जबर्दस्ती लिए जाने के कारण बगले के पंख सदृश ही गए ।

अब बोधिसत्व पंख पसारकर उड़ न सके । उसने उन्हें मटके में रखकर पाला । उनके जो नए पर निकले वह श्वेत ही निकले । पंख निकलने पर वह उड़कर अपने स्थान पर चले आए, और फिर वहाँ नहीं गए ।

शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात सुनाकर कहा—भिक्षुओ, थुल्लनन्दा अभी लालची नहीं रही है । पहले भी लालची रही है । लालच के ही कारण स्वर्ण से हाथ धोया । अब अपने लालच के कारण लहसुन से भी हाथ धोएगी । इसके बाद अब लहसुन खाना न मिलेगा । जैसे थुल्लनन्दा को वैसे ही उसके कारण दूसरी भिक्षुणियों को भी । इस लिए बहुत मिलने पर भी अपना अन्दाजा जानना चाहिए । थोड़ा मिलने पर जितना मिले उसी से सन्तोष करना चाहिए । अधिक की इच्छा नहीं करनी चाहिए ।

इतना कह यह गाथा कही—

में समान जाति के किसी आदमी को दिया। काणा किसी काम से माँ के घर आई।

कुछ दिन बीतने पर उसके स्वामी ने दूत भेजा—मैं चाहता हूँ कि काणा आवे। काणा चली आवे।

काणा ने दूत की बात सुन, माँ से पूछा—माँ! जाती हूँ।

काण-माता ने सोचा कि इतने दिन रहकर खाली हाथ कैसे जाएगी, इस लिए पुए पकाने लगी।

उस समय एक पिण्डपातिक[1] भिक्षु उसके घर आया। उपासिका ने उसे बिठाकर पात्रभर पुए दिलवाए। उसने निकल दूसरे (भिक्षु) से कहा। उसे भी वैसे दिलवाए। उसने भी निकलकर दूसरे से कहा। उसे भी वैसे ही। इस प्रकार चार जनों को पुए दिलवाए। सब तैयार पुए समाप्त हो गए। काणा का जाना नहीं हुआ।

उसके स्वामी ने दूसरा दूत भेजा और दूसरे के बाद तीसरा भेजा। तीसरे दूत के हाथ उसने कहला भेजा कि यदि काणा नहीं आएगी तो मैं दूसरी भार्या ले आऊँगा। तीनों बार उसी तरह जाना न हो सका। काणा का स्वामी दूसरी स्त्री ले आया। काणा ने जब यह सुना तो रोने लगी।

शास्ता को पता लगा तो पहन कर पात्र-चीवर ले काण-माता के घर जा बिछे आसन पर बैठकर पूछा—

'यह क्यों रोती है?'

'इस कारण से।'

शास्ता ने धर्मकथा कह काण-माता को दिलासा दिया। फिर उठकर विहार को गए।

उन चार भिक्षुओं का तीन बार तैयार पुए ले आकर काणा के गमन में बाधक होने की बात भिक्षुओं में प्रकट हो गई।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! चार

---

[1] जो भिक्षु केवल भिक्षा से ही निर्वाह करता है, निमन्त्रण आदि ग्रहण नहीं करता।

एक दिन उस बुढ़िया को बिल्ले ने पकड़ लिया । वह बोली—स्वामी ! मुझे न मारें ।"

"क्यों ? मुझे भूख लगी है ! मैं मांस खाना चाहता हूँ । मैं बिना मारे नहीं रह सकता ।"

"क्या केवल एक दिन एक ही बार मांस खाना चाहते हैं, अथवा नित्य प्रति ?"

"मिले तो नित्य खाना चाहूँगा ।"

"यदि ऐसा है, तो मुझे छोड़ दें । मैं नित्य प्रति मांस दिया करूँगी ।"

"अच्छा तो ध्यान रखना" कह बिल्ले ने उसे छोड़ दिया ।

उसके बाद से उसके लिए जो मांस आता उसके दो हिस्से करके एक बिल्ले को देती एक स्वयं खाती ।

फिर एक दिन उसे एक दूसरे बिल्ले ने पकड़ लिया । उसे भी उसी तरह मनाकर अपने आप को छुड़ाया । उसके बाद से तीन हिस्से करके खाने लगी । फिर एक और ने पकड़ लिया । उसे भी उसी तरह मनाकर अपने को छुड़ाया उसके बाद से चार हिस्से करके खाने लगी । फिर एक ने पकड़ लिया । उसे भी उसी तरह समझाकर अपने को छुड़ाया । उसके बाद से पाँच हिस्से करके खाने लगी ।

केवल पाँचवाँ हिस्सा मिलने से वह बुढ़िया आहार की कमी से कमजोर तथा दुबली हो गई । उसका मांस और रक्त कम पड़ गया । बोधिसत्त्व ने उसे देखकर पूछा—'अम्म ! म्लान क्यों पड़ गई है ?"

'इस कारण से ।"

'इतनी देर तक मुझे क्यों नहीं बताया । मैं जानता हूँ इसका क्या उपाय करना चाहिए ।'

इस प्रकार उसे दिलासा दे शुद्ध स्फटिक पत्थर की एक गुफा बनाकर बोधिसत्त्व ने कहा—

"अम्म ! तू इस गुफा में प्रवेश कर, वहाँ रह जो कोई आए उसे कठोर वचन से डाँट ।"

बुढ़िया गुफा में घुसकर बैठ रही । एक बिल्ले ने आकर कहा—मेरा मांस दे ।

चुहिया बोली—अरे दुष्ट बिलार ! क्या मैं तेरी नौकर हूँ कि मांस लाकर दूं। अपने पुत्रों का मांस खा।

बिल्ला नहीं जानता था कि चुहिया स्फटिक गुहा के अन्दर है। उसने क्रोध से सहसा आक्रमण किया कि चुहिया को पकड़ूंगा। उसका हृदय स्फटिक गुहा से टकराया और उसी समय चूर चूर हो गया। आँखें निकल आई सी हो गईं। वह वहीं मरकर एक छिपे हुए स्थान पर गिरा। इस प्रकार दूसरे चार जने भी मृत्यु को प्राप्त हुए।

उसके बाद से चुहिया निर्भय हो गई। वह बोधिसत्व को प्रतिदिन दो तीन कार्षापण देती। इस प्रकार उसने सारा धन बोधिसत्व को ही दे दिया। वे दोनों जीवन भर मित्रभाव से रह यथाकर्म (परलोक) सिधारे।

शास्ता ने यह पूर्वजन्म की कथा कह अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथा कही—

यत्थेको लभते बब्बु दुतियो तत्थ जायति,
ततियो च चतुत्थो च इदं ते बब्बुका बिलं॥

[जहाँ एक बिल्ले को (मांस) मिलता है दूसरा वहीं आता है। तीसरा भी वहीं आता है और चौथा भी वहीं। हे बिल्लो ! यह तेरा बिल[1] है।]

यत्थ जिस जगह। बब्बु, बिल्ला। दुतियो तत्थ जायति, जहाँ एक को चुहिया अथवा मांस मिलता है, दूसरा बिल्ला भी वहीं आता है। वैसे ही ततियो च चतुत्थो च, इस प्रकार यहाँ चार बिल्ले हुए। वे नित्य प्रति दिन मांस खाते हुए। ते बब्बुका इदं स्फटिक का बना हुआ बिल छेद में पड़कर सभी मर गए।

इस प्रकार शास्ता ने धर्मोपदेश दे जातक का मेल बैठाया।

उस समय के चारों बिल्ले चार भिक्षु हुए। चुहिया काणमाता हुई। पत्थर फोड़नेवाला जौहरी तो मैं ही था।

---

[1]प्रतीत होता है कि यह गाथा चुहिया द्वारा कही गई थी। इस में 'बिलं' शब्द का अर्थ 'बिल्लो' होना चाहिए। अट्ठकथाकार ने यह गाथा बुद्ध-भाषित बताई है; और बिल का जो अर्थ किया है वह ठीक नहीं लगता।

१३८. गोध जातक

"किं ते जटाहि दुम्मेध..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

वर्तमान-कथा जैसी कथा पहले आई है,[1] वैसी ही है।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व गोह के रूप में पैदा हुए।

उस समय पाँच-अभिञ्ञा-प्राप्त (एक) उग्र तपस्वी एक गाँव के समीप जंगल में पर्ण-कुटी में रहता था। ग्रामवासी तपस्वी की अच्छी तरह सेवा करते थे। बोधिसत्व उसके चङ्क्रमण करने की जगह के पास एक बिल में रहते थे। प्रतिदिन दो तीन बार तपस्वी के पास आकर धर्म तथा अर्थपूर्ण बातें सुन तपस्वी को प्रणाम कर अपने निवासस्थान को लौट जाते। आगे चलकर तपस्वी ग्राम-वासियों को पूछकर वहाँ से चला गया। उस शीलव्रतसम्पन्न तपस्वी के चले जाने पर एक दूसरा कुटिल तपस्वी आकर उसी आश्रम में रहने लगा। बोधि-सत्व उसे भी पहले ही तपस्वी की तरह सदाचारी समझ उसके पास गए।

एक दिन ग्रीष्मऋतु में अकाल वर्षा बरसने पर बिलों में से मक्खियाँ निकलीं। उन्हें खाने के लिए गोहें घूमने लगीं। ग्रामवासियों ने बाहर निकल बहुत सी गोहें पकड़ चिकनी भोजन सामग्री के साथ खट्टा-मीठा गोह-मांस तैयारकर उस तपस्वी को दिया।

---

[1] भीमसेन जातक (८०)

तपस्वी ने गोह का मांस खाया तो उसे बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने पूछा—यह मांस बड़ा मीठा है। किसका मांस है? जब उसे पता लगा कि किसका मांस है, तो वह सोचने लगा कि मेरे पास बड़ी गोह आती है। उसे मारकर उसका मांस खाऊँगा। उसने पकाने के बरतन और उनके साथ घी, नमक आदि लेकर एक ओर रख लिए। स्वयं मुद्गर ले काषाय वस्त्र से ढँक पर्णकुटी के सामने शान्तचित्त की तरह बैठ बोधिसत्त्व की प्रतीक्षा करने लगा।

बोधिसत्त्व शाम को तपस्वी के पास जाने के लिए निकले। समीप पहुँचते ही उसकी इन्द्रियों में विकार देखकर सोचने लगे—यह तपस्वी उस तरह नहीं बैठा है जैसे और दिनों बैठा रहता था। आज यह मेरी ओर कुपित दृष्टि से देख रहा है। इसकी परीक्षा करूँगा। वे जिधर से तपस्वी की देह को छूकर हवा आ रही थी उधर खड़े हुए। गोह के मांस की गन्ध आई। उसे सूँघकर बोधिसत्त्व ने सोचा—इस कुटिल तपस्वी ने आज गोह-मांस खाया होगा। इसी से यह रस-तृष्णा से आतुर हो गया। आज मेरे समीप पहुँचने पर मुझे मुद्गर से मार मांस पकाकर खाना चाहता होगा। वह उसके पास न जा वापिस लौटकर घूमने लगे।

तपस्वी ने बोधिसत्त्व को न आता देख समझा कि यह जान गया होगा कि मैं इसे मारना चाहता हूँ। इसी से नहीं आता है। न आने पर भी वह कहाँ बचकर जाएगा। उसने मुद्गर निकाल फेंककर मारा। वह उसकी पूँछ के सिरे में ही लगा।

बोधिसत्त्व जल्दी से बिल में प्रविष्ट हो दूसरे छेद से मुँह निकालकर बोले—'कुटिल जटिल! मैं तुझे सदाचारी समझ कर तेरे पास आता। लेकिन अब मैंने तेरा कुटिल स्वभाव जान लिया। तेरे जैसे महाचोर को इस प्रव्रजित भेष से क्या?' इस प्रकार उसकी निन्दा करते हुए यह गाथा कही—

किं ते जटाहि दुम्मेध किं ते अजिनसाटिया,
अब्भन्तरं ते गहनं बाहिरं परिमज्जसि ॥[1]

---

[1] धम्मपद (२६।१२)

[हे दुर्बुद्धि ! जटाओं से तुझे क्या (लाभ) ? और मृगचर्म के पहनने से क्या ? अन्दर से तो तू मैला है, बाहर से धोता है ।]

कि ते जटाहि दुम्मेध, भो, दुर्बुद्धि ! मूर्ख ! यह जटाएँ प्रव्रजित को धारण करनी चाहिएँ । प्रव्रज्या गुण से तू रहित है । तुझे इन जटाओं से क्या लाभ ? कि ते अजिन साटिया, मृग-चर्म के अनुकूल संयम का अभाव है, तब इस मृग-चर्म से क्या ? अब्भन्तर ते गहनं—तेरा भीतर राग, द्वेष तथा मोह से मलिन है, ढका हुआ है । बाहिरं परिमज्जसि, सो तू अभ्यन्तर को मैला ही रख स्नान आदि से तथा (श्रमण-) चिह्न धारण करके बाहर को साफ करता है । तू वैसा ही है जैसे काञ्जी से भरा हुआ तुम्बा हो, विष से भरा घड़ा हो, साँप से भरी हुई बाँबी हो अथवा गूह से भरा हुआ चित्रित घड़ा हो । तुम चोर के यहाँ रहने से क्या ? शीघ्र भाग । यदि नहीं जाएगा तो ग्रामवासियों को कहकर तेरा निग्रह करवाऊँगा ।

इस प्रकार बोधिसत्व उस कुटिल तपस्वी को धमकाकर बिल में चले गए । कुटिल तपस्वी भी वहाँ से चला गया ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया । उस समय कुटिल तपस्वी यह ढोंगी था । पहला शीलवान् तपस्वी सारिपुत्र था । गोह-पण्डित तो मैं ही था ।

१३९. उभतोभट्ठ जातक

"अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही ।

क. वर्तमान कथा

एक समय भिक्षुओं ने धर्म सभा में बातचीत चलाई—'आयुष्मानो! जैसे कोई श्मशान की लकड़ी हो, जो दोनों ओर से जली हो और जिसके बीच में गूह लगा हुआ हो, वह न जंगल में लकड़ी का काम देती है, न गाँव में ही लकड़ी का काम देती है। इसी प्रकार देवदत्त ऐसे कल्याणकर शासन में प्रव्रजित हो दोनों ओर से भ्रष्ट हो गया, दोनों ओर से बाहर हो गया। गृहस्थों के भोगों को भी नहीं भोगता और श्रामण्य के उद्देश्य को भी पूर्ण नहीं करता।'

शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत'। 'भिक्षुओ! देवदत्त केवल अभी उभयभ्रष्ट नहीं हुआ है, पूर्व समय में भी भ्रष्ट हुआ है।' इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व वृक्ष-देवता होकर पैदा हुए।

उस समय एक गाँव में मछुए रहते थे। एक मछुआ जाल ले अपने छोटे पुत्र के साथ जिस तालाब में मछुए साधारणतः मछली पकड़ते थे, वहाँ गया। जाकर जाल फेंका। जाल पानी में छिपे हुए एक ठूँठ में जा फँसा। मछुए ने जब देखा कि वह निकलता नहीं है तो सोचा कि जाल में कोई बड़ी मछली फँसी होगी। मैं लड़के को (उसकी) माँ के पास भेजकर पड़ोसी से झगड़ा करवाता हूँ। तब कोई इसमें से हिस्सा पाने की आशा न करेगा। उसने पुत्र से कहा—तात! जा। माँ से कह कि हमें बड़ी मछली मिली है और यह भी कह कि वह पड़ोसियों से झगड़ा कर ले।

पुत्र को भेजने के बाद जब वह जाल को न खींच सका, तो रस्सी टूटने के भय से उसने ओढ़ना उतार कर जमीन पर रक्खा और पानी में उतरा। मछली के लोभ से मछली को ढूँढ़ते हुए ठूँठ से टकरा गया। उसकी दोनों आँखें फूट गईं। जमीन पर रक्खे हुए उसके कपड़े को चोर ले गए।

वह पीड़ा से पगला हो हाथ से आँखों को दबाए हुए पानी से बाहर निकल काँपता हुआ कपड़े खोजने लगा।

उसकी भार्य्या ने भी सोचा कि मैं झगड़ा करके ऐसा कर दूँ कि कोई कुछ पता न रक्खे। उसने एक कान में ताड़ का पत्ता पहना, एक आँख में हाँडी का काजल लगाया और गोद में कुत्ता ले पड़ोसी के घर गई। उसकी एक पड़ोसिन बोली—"तूने एक ही कान में ताड़ का पत्ता डाला है, एक ही आँख में काजल लगाया है और गोद में कुत्ते को ऐसे लेकर जैसे यह तेरा प्यारा पुत्र हो एक घर से दूसरे घर घूम रही है। क्या तू पगली हो गई है?"

"मैं पगली नहीं हूँ? तू मुझे व्यर्थ ही गाली देती है, मजाक करती है। अब मैं मुखिया[1] के पास जाकर तुझपर आठ कार्षापण जुर्माना करवाऊँगी।"

इस प्रकार परस्पर झगड़कर दोनों मुखिया के पास गईं। दोनों का पक्ष सुनने से वही दण्डित हुई।

लोग उसे बाँधकर पीटने लगे कि जुर्माना दे।

वृक्ष-देवता ने गाँव में उसकी यह हालत और जंगल में उसके पति की विपत्ति को देख एक टहनी पर खड़े होकर कहा—भो! पुरुष! जल में भी तेरा काम बिगड़ा, स्थल पर भी। तू दोनों ओर से भ्रष्ट होगया। इतना कह यह गाथा कही—

अक्खी भिन्ना पटो नट्ठो सखीगेहे च भण्डनं,
उभतो पदुट्ठकम्मन्तो उदकम्हि थलम्हि च ॥

[आँख फूट गई। कपड़ा खोया गया। सखी के घर में झगड़ा हुआ। जल और स्थल दोनों ही में तेरा काम बिगड़ गया।]

सखीगेहे च भण्डनं, सखी का मतलब है पड़ोसिन। उसके घर में तेरी भार्य्या ने भण्डन किया। झगड़ा करके बाँधी गई, पीटी गई और दण्डित हुई। उभतो पदुट्ठ कम्मन्तो, इस प्रकार दोनों ओर से तेरा काम बिगड़ा है। कौन से दो स्थानों में? उदकम्हि थलम्हि च, पानी में और स्थल पर।

---

[1] ग्राम-भोजक।

होने से जल में काम बिगड़ा, सती के घर पर झगड़ा होने से स्थल पर काम बिगड़ा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मधुमा देवदत्त था। वृक्षदेवता तो मैं ही था।

१४०. काक जातक

"निच्चं उब्बिग्ग हृदया..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय जाति-सेवा के बारे में कही। वर्तमान कथा बारहवें निपात की भद्दसाल जातक[1] में आएगी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व कौए की योनि में पैदा हुए।

एक दिन राजा का पुरोहित नगर के बाहर नदी पर स्नान कर, सुगन्धित लेप कर, मालाएँ पहन सुन्दर वस्त्र धारण किए नगर में प्रविष्ट हुआ। नगर-द्वार के तोरण पर दो कौए बैठे थे। उनमें से एक ने दूसरे को कहा—

"मित्र! मैं इस ब्राह्मण के सिर पर बीट करूँगा।"

"यह अच्छा नहीं है। यह ब्राह्मण ऐश्वर्यशाली है। ऐश्वर्यशालियों के साथ वैर करना बुरा है। यह क्रुद्ध होने पर सभी कौओं को भी नष्ट कर सकता है।"

---

[1] भद्दसाल जातक (४६५)

"मुझसे बिना किए नहीं रहा जाता।"

"अच्छा तो पता लगेगा" कह दूसरा कौआ उड़ गया।

जब ब्राह्मण तोरण के नीचे आया उसने ओलम्बक[1] गिराने हुए की तरह उसके सिर पर बीट गिरा दी। ब्राह्मण क्रुद्ध हो कौओं का वैरी हो गया।

उस समय मजदूरी पर धान कूटनेवाली एक दासी धूप में घर के दरवाजे पर धान फैला उसकी देखभाल कर रही थी। उसे बैठे बैठे नींद आ गई। उसे असावधान जान एक लम्बे बालोंवाला बकरा आकर धान खा गया। उसने जाग उसे देखकर भगाया।

बकरे ने दूसरी तीसरी बार भी उसे उसी प्रकार सोता देख आकर धान खाया। उसने भी उसे तीनों बार भगाया। तब वह सोचने लगी—इस प्रकार यह बार बार खाकर आधा धान खा जायगा। मेरी बड़ी हानि होगी। अब मैं ऐसा प्रबन्ध करूँगी कि यह फिर न आए।

वह जलती हुई लकड़ी ले सोई हुई की तरह बैठ रही। जब बकरा धान खाने आया उसने उठकर जलती हुई लकड़ी से मारा। बालों में आग लग गई। शरीर जलने पर वह आग बुझाने के लिए जल्दी से भागकर हस्तिशाला के पास गया और वहीं एक तृण-कुटी से शरीर रगड़ा। उस कुटी को आग लग गई। वहाँ से उठी ज्वाला हस्तिशाला में जा लगी। हस्तिशाला के जलने से हाथियों की पीठ जली। बहुत से हाथियों के शरीर में जख्म हो गए। वैद्य हस्तियों को निरोग न कर सका, तो उसने राजा से कहा। राजा ने पुरोहित से पूछा—"आचार्य्य! हाथियों का वैद्य हाथियों की चिकित्सा नहीं कर सकता। कोई दवाई जानते हैं?"

"महाराज, जानता हूँ।"

"किस चीज की जरूरत होगी?"

"महाराज, कौवे की चर्बी।"

राजा ने आज्ञा दी—तो कौवों को मारकर कौवा की चर्बी लाओ।

---

[1] शत्रु-पक्ष के हाथी के नगर-द्वार में प्रवेश करने पर उसके ऊपर ओर से छोड़ी जाने वाली भीमकाय लकड़ी।

उसके बाद से कौवे मारे जाने लगे; और चर्बी न पाकर जहाँ तहाँ उनका ढेर लगाया जाने लगा। कौवों पर बड़ी भारी विपत्ति आई।

उस समय बोधिसत्व अस्सी हजार कौवों के साथ महाश्मशान वन में रहते थे। एक कौवे ने जाकर बोधिसत्व को कौवों पर आई विपत्ति का समाचार कहा। उसने सोचा—"मेरे अतिरिक्त कोई मेरी जातिवालों के दुःख को दूर नहीं कर सकता। मैं दूर करूँगा।"

बोधिसत्व दस पारमिताओं का ध्यान कर, मैत्री पारमिता को प्रमुख कर एक ही उड़ान में उड़ खुले हुए बड़े रोशनदान में प्रविष्ट हो राजा के आसन के नीचे जा बैठे। उन्हे एक मनुष्य पकड़ने लगा। राजा ने रोका—शरण में आए को मत पकड़ो। बोधिसत्व ने थोड़ा विश्राम ले मैत्री-पारमी का ध्यान कर आसन के नीचे से निकल राजा से कहा—महाराज! राजा को चाहिए कि वह उत्तेजना के वशीभूत होकर राज्य न करे। जो भी कार्य्य करना हो वह सोच विचार कर करना चाहिए। जो करने से हो सके, वही कार्य्य करना चाहिए; दूसरा नहीं। यदि राजा ऐसा कार्य्य करते है जिसका कोई फल नहीं होता तो वह जनता के लिए मरण होता है, महान् भय का कारण होता है। पुरोहित ने वैर के वश हो झूठ कहा है। कौवों को चर्बी होती ही नहीं।

राजा प्रसन्न हुआ। उसने बोधिसत्व को सोने का सुन्दर पीढ़ा दिया। वहाँ बैठने पर उसके परों को शत-पाक सहस्र-पाक तैल लगवाया। सोने के थाल में राज-भोजन दिलवाया। पानी पिलवाया। अच्छी तरह से खा चुकने पर जब बोधिसत्व सुखपूर्वक बैठे तब राजा ने पूछा—"पण्डित, तू कहता है, कौवों को चर्बी नहीं होती। उनको चर्बी क्यों नहीं होती?"

बोधिसत्व ने इन इन कारणों से नहीं होती बताते हुए सारे घर को अपने शब्द से गुंजाते हुए धर्म-कथा की; और यह गाथा कही—

निच्चं उब्बिग्गहदया सब्बलोकविहेसका,
तस्मा तेसं वसा नत्थि काकानस्माकजातिनं ॥

[हृदय नित्य उद्विग्न रहता है। सारे संसार को कष्ट देते है। इसलिए राजा! हमारी जाति के लोग—जो कौए है—चर्बी-रहित होते है।]

———

महाराज ! कौवे सदैव उद्विग्न हृदय होते हैं, भयभीत ही विचरते हैं। सारे संसार को कष्ट देते हैं—क्षत्रिय आदि को भी, स्त्री-पुरुष को भी, लड़के लड़कियों को भी—सभी को तकलीफ पहुँचाते हैं। इसलिए इन दो कारणों से हमारे जातिवालों को चर्बी नहीं होती। पहले भी नहीं हुई। आगे भी नहीं होगी।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने यह बात स्पष्ट कर राजा को समझाया—महाराज ! राजा किसी भी बात को बिना सोचे-विचारे नहीं करते।

राजा ने प्रसन्न हो राज्य बोधिसत्त्व को भेंट किया। बोधिसत्त्व ने राज्य राजा को लौटा दिया। फिर उसे पञ्चशीलों में प्रतिष्ठित कर उसने सभी प्राणियों को अभय-दान देने के लिए कहा। राजा ने धर्मोपदेश सुन सभी प्राणियों को अभय-दान दे कौओं के लिए नित्य-भोजन बाँध दिया। प्रतिदिन अम्मण भर चावल का भात पकाकर नाना प्रकार के रसों से मिलाकर कौओं को दान दिया जाता। बोधिसत्त्व को राज-भोजन ही मिलता।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी राजा आनन्द था। कौओं का राजा तो मैं ही था।

पहला परिच्छेद

१५. ककण्टक वर्ग

१४१. गोध जातक (२)

"न पापजनसंसेवी..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय विपक्षी भिक्षु की संगत करने वाले भिक्षु के बारे में कही। वर्तमान कथा महिलामुख जातक[1] की कथा के ही समान है।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गोह के रूप में पैदा हुए। बड़े होने पर वह नदी के किनारे एक बड़े बिल में सैकड़ों गोहों के साथ रहने लगे।

उनके पुत्र गोह-पिल्ले की एक गिरगिट के साथ दोस्ती हो गई। वह उनके साथ आनन्द मनाता और गले लगाने के लिए उन पर आ पड़ता।

उस गिरगिट के साथ उसकी दोस्ती की बात गोहराज से कही गई। गोहराज ने पुत्र को बुलाकर कहा—

"तात! तू अनुचित स्थान में विश्वास कर रहा है। गिरगिट की जाति नीच होती है। उसका विश्वास नहीं करना चाहिए। यदि तू उसका विश्वास करेगा, तो मेरे और गिरगिट के कारण यह सारा गोह-कुल विनाश को प्राप्त होगा। अब से इसके साथ दोस्ती मत रख।" उसने दोस्ती नहीं ही तोड़ी।

---

[1] महिलामुख जातक (२६)

जब बोधिसत्त्व के बार बार कहने से भी उनकी मित्रता जैसी की तैसी रही, तब बोधिसत्त्व ने सोचा कि इस गिरगिट के कारण हमको अवश्य खतरा होगा। खतरे के समय के लिए भागने का मार्ग तैयार होना चाहिए। उसने एक तरफ हवा आने का रास्ता बनवा लिया।

बोधिसत्त्व का पुत्र भी शनैः शनैः बड़े शरीर वाला हुआ, गिरगिट वैसा ही छोटा रहा। वह समय समय पर उसका आलिङ्गन करने के लिए गिरगिट पर आ पड़ता। गिरगिट को ऐसा मालूम देता कि मानो उस पर पर्वत आ पड़ा है। उसने कष्ट पाते हुए सोचा कि यदि यह और कुछ दिन इस प्रकार मेरा आलिङ्गन करता रहा तो मैं जीवित नहीं रहूँगा। इसलिए किसी शिकारी के साथ मिलकर इस गोह-कुल को ही नष्ट करवाऊँ।

एक दिन ग्रीष्म ऋतु में वर्षा होने पर बाँबी से मक्खियाँ निकलीं। जहाँ तहाँ से गोह निकलकर मक्खियों को खाने लगे। एक गोह-शिकारी गोह के बिल को खोदने के लिए कुदाल और कुत्ते साथ में ले जंगल में घूम रहा था। गिरगिट ने उसे देखकर सोचा कि आज अपना मनोरथ पूरा करूँगा? उसके पास जा थोड़ी दूर पर ठहर पूछा—हे ! पुरुष ! जंगल में क्यों घूम रहे हो ?" उसने कहा—गोहों के लिए। गिरगिट बोला—"मैं कई सौ गोहों का निवास-स्थान जानता हूँ। चल आग और पुआल लेकर आओ।" उसे वहाँ ले जाकर कहा—यहाँ पुआल रख, आग लगाकर धुआँ कर। चारों तरफ कुत्तों को छोड़। स्वयं बड़ा मुद्गर लेकर बैठ। जो जो गोह निकलें उन्हें मार मारकर ढेर लगा। इतना कह एक जगह पर सिर उठाकर पड़ रहा—आज शत्रु की पीठ[1] देखने को मिलेगा।

शिकारी ने पुआल का धुआँ किया। धुआँ बिल में घुसा। गोह धुएँ से डरे हुए [illegible] मरण-भय से बाहर भागे। शिकारी ने जो जो बाहर निकले [illegible]। [illegible] को भागने न दिया। गोहों के लिए सर्वनाश उपस्थित हुआ।

---

[1] शत्रु की पीठ देखना विजय का अभिप्राय है शब्दशः, यहाँ विनाश से अभिप्राय है।

१४२. सिगाल जातक

"एतं हि ते दुराजानं..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के (तथागत को) मारने का प्रयत्न करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

धर्म-सभा में भिक्षुओं की बातचीत सुनकर तथागत ने कहा—भिक्षुओ! देवदत्त ने केवल अभी मेरे वध की कोशिश नहीं की। पहले भी की ही है। लेकिन मुझे मार नहीं सका। स्वयं ही दुखी हुआ। यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व गीदड़ होकर पैदा हुए। वह शृगाल-राजा बन शृगाल गण सहित श्मशान में रहने लगे।

उस समय राजगृह में उत्सव था। अधिकांश मनुष्य सुरा पीते थे, वह था ही सुरा-उत्सव। अनेक धूर्त बहुत सी सुरा और मांस ले आए, और मस्त होकर सुरा पीने तथा मांस खाने लगे। रात्रि के पहले पहर में ही उनका मांस समाप्त हो गया, सुरा तो बहुत थी।

एक बोला—"मांस का टुकड़ा दो।"

दूसरे ने कहा—"मांस तो समाप्त हो गया।" "मेरे खड़े रहते कहीं मांस समाप्त हो सकता है?" कह उसने सोचा कि कच्चे श्मशान में मृत मनुष्यों को खाने के लिए आए हुए शृगालों को मारकर मांस लाऊँगा। वह एक मोंगरी ले नाली के रास्ते शहर से निकल श्मशान में जा मोंगरी सहित मृतक की तरह सीधा ही लेट रहा।

१४३. विरोचन जातक

"लसी च ते निप्फलिता...", इसे शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के गयाशीर्ष[1] पर सुगत (तथागत) की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त का ध्यान (-बल) जाता रहा और उसको लोगों से जो प्राप्ति होती थी वह बन्द हो गई तथा लोगों ने उसका सत्कार करना छोड़ दिया तो उसने सोचकर एक उपाय निकाला। उसने बुद्ध से पाँच बातों[2] की याचना की, जिन्हें शास्ता ने अस्वीकार किया। तब उसने दोनों अग्रश्रावकों[3] के पाँच सौ शिष्यों को जो अभी प्रव्रजित हुए तथा धर्म-विनय से सुपरिचित न थे बहकाया और उन्हें गयाशीर्ष पर ले जाकर संघ में भेद पैदा कर एक सीमा[4] में पृथक विनय-कर्म[5] करने लगा।

शास्ता ने उन भिक्षुओं के आने का समय देख दोनों अग्रश्रावकों को भेजा। उन्हें देख देवदत्त प्रसन्न हुआ। रात को धर्मोपदेश देते समय उसने सोचा कि मैं बुद्ध की नकल करूँगा। वह बोला—सारिपुत्र! भिक्षु-गण

---

[1] गया का ब्रह्मयोनि पर्वत।

[2] पाँच बातें यह हैं—(१) जिन्दगी भर वन में ही रहा करें (२) जिन्दगी भर भिक्षा माँग कर ही खाएँ (३) जिन्दगी भर फेंके चीथड़ों के ही चीवर पहनें (४) जिन्दगी भर पेड़ के नीचे ही रहें (५) जिन्दगी भर मछली मांस न खाएँ (चुल्लवग्ग, द्वितीय भाणवार)।

[3] सारिपुत्र और मौद्गल्यायन।

[4] सीमित-प्रदेश।

[5] सांघिक कर्म।

शिकार के लिए निकले एक गीदड़ ने उन्हें एकाएक देखा। जब वह भाग न सका तो वह केसरी के पैरों में जाकर गिर पड़ा।

"जम्बुक ! क्या बात है ?"

"स्वामी ! मैं आपके चरणों की सेवा करना चाहता हूँ।"

"अच्छा, आ मेरी सेवा कर। मैं तुझे अच्छे अच्छे मास खिलाऊँगा।" कह जम्बुक को कञ्चनगुफा में ले गया।

गीदड़ तब से सिंह का मारा हुआ मास ही खाता रहा। कुछ ही दिन में वह मोटा हो गया।

एक दिन गुफा में पड़े ही पड़े उसे केसरी ने कहा—"जम्बुक ! जा, पर्वत की चोटी पर चढ़कर पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी, घोड़े तथा भैंसे आदि में से जिस किसी का मास खाना चाहे, आकर मुझसे कह कि मैं अमुक पशु का मास खाना चाहता हूँ। और मुझे प्रणाम कर यह भी कह कि 'हे स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ।' मैं उसे मार, उसका मास खा, तुझे भी दूँगा।"

गीदड़ पर्वत की चोटी पर चढ़ नाना प्रकार के पशुओं को देख जिसका भी मास खाना चाहता कञ्चनगुफा में आकर सिंह से निवेदन कर उसके पाँव में गिरकर कहता—स्वामी ! अपना पराक्रम प्रकट करें। सिंह जल्दी से छलाँग मारकर चाहे मस्त हाथी ही होता उसकी हत्या कर उसका मास स्वयं खाता और शृगाल को भी देता। गीदड़ पेट भर कर मास खा, गुफा में जा सो रहता।

इस प्रकार ज्यों ज्यों समय व्यतीत हुआ उसके दिल में अभिमान पैदा हो गया। मेरे भी तो चार पैर हैं। मैं क्यों रोज रोज दूसरे पर निर्भर रहता हूँ। अब से मैं भी हाथी आदि को मारकर मास खाऊँगा। सिंह भी 'हे मृगराज ! स्वामी ! अपना पराक्रम दिखाएँ' कहने पर ही हाथियों को मारता है, मैं भी सिंह से यह कहलवाऊँगा कि 'हे जम्बुक ! अपना पराक्रम दिखा' और एक बढ़िया हाथी को मार उसका मास खाऊँगा।

उसने शेर से कहा—स्वामी ! मैंने बहुत देर तक आपके मारे हुए हाथियों का मास खाया। मैं भी एक हाथी को मारकर उसका मास खाना चाहता हूँ। जिस जगह आप कञ्चनगुफा में लेटते हैं, मैं वहाँ लेट रहूँगा। आप पर्वत के नीचे घूमनेवाले हाथी को देख मेरे पास आकर कहें 'जम्बुक ! अपना पराक्रम

यं तं थालधिनाभिजूयाम, आज हम तुझे जो अपनी पास की चीज भी सुरक्षित नहीं रख सकता उसकी पूंछ से पूजा कर रहे हैं। यही प्रकट करता है कि यह भी तेरे लिए बहुत कर रहे हैं। भंसारहस्स, तुझे मास चाहिए था। आज तेरे लिए मास नहीं है। नङ्गुट्ठम्पि भव परिगण्हातु, अपनी चीज को रख सकने में असमर्थ आप यह खुरसहित जाँघ का चर्म और पोंछ भी ग्रहण करें।

इस प्रकार वह बोधिसत्त्व आग को पानी से बुझा ऋषि-प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ब्रह्मलोक-परायण हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

आग को बुझानेवाला तपस्वी उस समय मैं ही था।

१४५. राध जातक

"न त्वं राध ! विजानासि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते हुए पूर्व-भार्य्या के प्रति आसक्ति के बारे में कही। वर्तमान-कथा इन्द्रिय-जातक[1] में आएगी।

शास्ता ने उस भिक्षु को बुलाकर कहा—भिक्षु स्त्रियों को बचाया नहीं जा सकता। पहरेदार रखने से भी उनकी देखभाल नहीं हो सकती। तू भी पहले पहरेदार रखकर भी नहीं बचा सका। अब कैसे बचा सकेगा? इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही--

---

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

विरक्त है। हमारे पिता के प्रति प्रेम नहीं है। यदि उसका उसमें प्रेम या स्नेह होता तो इस प्रकार अनाचार न करती। इन शब्दों से इस बात को प्रकट किया।

इस प्रकार वह जार को ब्राह्मणी के साथ सोने नहीं दिया।

वह भी जब तक ब्राह्मण नहीं आया तब तक यथारुचि अनाचार करती रही। ब्राह्मण ने लौटकर पोट्ठपाद से पूछा—तात! तेरी माँ कैसी है? बोधिसत्व ने ब्राह्मण को जो जो हुआ सब कह दिया। फिर कहा—"तात! इस प्रकार की दुश्चरित्रा से तुम्हें क्या प्रयोजन? माता का दोष प्रकट करने के बाद से अब हम यहाँ नहीं रह सकते।" वह ब्राह्मण के पाँव में गिरकर जार के सहित उड़कर जंगल चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला चार आर्य-सत्य प्रकाशित किए। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ। उस समय ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जने थे। जार आनन्द था। पोट्ठपाद मैं ही था।

१४६. काक जातक

"अपि नु हनुका सन्ता..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बहुत से वृद्ध भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे गृहस्थ होने के समय श्रावस्ती के धनी परिवार के थे। एक दूसरे के मित्र थे। परस्पर मिलकर पुण्य करते थे। बुद्ध का उपदेश सुनकर उन्होंने

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुए।

एक कौवा अपनी कौवी को लेकर चोगा खोजता हुआ समुद्र के किनारे गया। उस समय मनुष्य समुद्र तट पर दूध की खीर, मत्स्य-मांस तथा सुरा आदि से भाग को बलि चढ़ा चले गए थे। कौवे ने बलि की जगह पहुँच, खीर आदि देख कौवी के साथ दूध-खीर, मत्स्य-मांस आदि खाकर बहुत सी सुरा पी ली। सुरापान से वे दोनों नशे में मस्त हो गए। उन्होंने सोचा कि समुद्र-क्रीड़ा करें। इस उद्देश्य से वह किनारे पर बैठकर स्नान करने लगे। एक लहर आई और कौवी को समुद्र में बहा ले गई। उसे एक मच्छ मांस खाकर निगल गया। कौआ रोने पीटने लगा—मेरी भार्य्या मर गई।

उसके रोने पीटने की आवाज सुन बहुत से कौवे इकट्ठे होकर पूछने लगे—क्यों रोते हो? किनारे पर नहाती हुई मेरी भार्य्या को लहर ले गई। वे सब एक स्वर से रोने लग गए।

उनको यह ख्याल हुआ कि हमारे सामने इस समुद्र-जल की क्या सामर्थ्य है? हम पानी को उलीचकर समुद्र को खाली कर अपनी सहायिका को निकाल लेंगे। वे मुँह भर भरकर पानी बाहर छोड़ने लगे। निमक के पानी से गला जलने पर वह स्थल पर जाकर विश्राम लेते।

जब उनकी दाढ़ें थक गईं, मुंह सूख गए, आँखें लाल पड़ गईं तो उन्होंने दीन दुखी होकर एक दूसरे को सम्बोधन कर कहा—"भो! हम तो समुद्र से पानी लाकर बाहर गिराते हैं, लेकिन जिस जिस जगह से पानी लाते हैं वह फिर पानी से भर जाती है। हम समुद्र को खाली न कर सकेंगे।" इतना कह, यह गाथा कही—

> अपि नु हनुका सन्ता मुखञ्च परिसुस्सति,
> ओरमाम न पारेम पूरतेव महोदधि॥

[हमारी दाढ़ थक गई और मुँह सूखता है। हम प्रयत्न करते हैं, लेकिन पार नहीं पाते। महासमुद्र भरता ही जाता है।]

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व समुद्र-देवता होकर पैदा हुए।

एक कौवा अपनी कौवी को लेकर भोगा खोजता हुआ समुद्र के किनारे गया। उस समय मनुष्य समुद्र तट पर दूध की खीर, मत्स्य-मांस तथा सुरा आदि से नाग को बलि चढ़ा चले गए थे। कौवे ने बलि की जगह पहुँच, खीर आदि देख कौवी के साथ दूध-खीर, मत्स्य-मांस आदि खाकर बहुत सी सुरा पी ली। सुरापान से वे दोनों नशे में मस्त हो गए। उन्होंने सोचा कि समुद्र-क्रीड़ा करें। इस उद्देश्य से वह किनारे पर बैठकर स्नान करने लगे। एक लहर आई और कौवी को समुद्र में बहा ले गई। उसे एक मच्छ मांस खाकर निगल गया। कौआ रोने पीटने लगा—मेरी भार्य्या मर गई।

उसके रोने पीटने की आवाज सुन बहुत से कौवे इकट्ठे होकर पूछने लगे—क्यों रोते हो? किनारे पर नहाती हुई मेरी भार्य्या को लहर ले गई। वे सब एक स्वर से रोने लग गए।

उनको यह ख्याल हुआ कि हमारे सामने इस समुद्र-जल की क्या सामर्थ्य है? हम पानी को उलीचकर समुद्र को खाली कर अपनी सहायिका को निकाल लेंगे। वे मुँह भर भरकर पानी बाहर छोड़ने लगे। निमक के पानी से गला सूखने पर वह स्थल पर आकर विश्राम लेते।

जब उनकी दाढ़ें थक गईं, मुख सूख गए, आँखें लाल पड़ गईं तो उन्होंने दीन दुःखी होकर एक दूसरे को सम्बोधन कर कहा—"भो! हम तो समुद्र से पानी लाकर बाहर गिराते हैं, लेकिन जिस जिस जगह से पानी लाते हैं वह फिर पानी से भर जाती है। हम समुद्र को खाली न कर सकेंगे।" इतना कह, यह गाथा कही—

> अपि नु हनुका सन्ता मुखञ्च परिसुस्सति,
> ओरमाम न पारेम पूरतेव महोदधि ॥

[हमारी दाढ़ें थक गईं और मुँह सूखता है। हम प्रयत्न करते हैं, लेकिन पार नहीं पाते। महासमुद्र भरता ही जाता है।]

तू नरक में पैदा हुआ। अब फिर तू उसे ही क्यों चाहता है?" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व आकाश-स्थित देवता हुए।

वाराणसी में कार्तिक मास की रात्रि का उत्सव हुआ। नगर देवनगर की तरह सजाया गया। सब लोग उत्सव मनाने में मस्त थे।

एक दरिद्र आदमी के पास केवल एक ही मोटे कपड़े का जोड़ा था। उसने उसे अच्छी तरह धुलवाकर स्त्री कराके उसमें सैकड़ों, हजारों चुनन देकर रक्खा था।

उसकी भार्य्या बोली—"स्वामी! मेरी इच्छा है कि केसर के रंग का एक वस्त्र पहन तेरे गले में लग कार्तिक रात्रि के उत्सव में विचरूँ।"

स्वामी बोला—'भद्रे! हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ से आएगा? यही वस्त्र पहन कर खेल।"

केसर रंग न मिलने पर उत्सव न खेलूँगी। तू दूसरी स्त्री लेकर खेल।"

भद्रे! मुझे क्या कष्ट देती है। हम दरिद्रों के पास केसर कहाँ?"

स्वामी! पुरुष की इच्छा हो तो क्या नहीं है? क्या राजा के केसर-[illegible] में बहुत केसर नहीं है?"

भद्रे! वह स्थान राक्षसों से सुरक्षित तालाब की तरह बहुत बलवान [illegible] से सुरक्षित है। वहाँ नहीं जा सकता। तू उसकी इच्छा मत कर। [illegible] उसी से सन्तुष्ट रह।

[illegible] क्या कोई ऐसी जगह है जहाँ आदमी [illegible]

[illegible] के कारण उसने उसकी बात स्वीकार [illegible] कर।'

[illegible] जीवन का मोह छोड़ नगर से निकल [illegible] बाड़ बाग में दाखिल हुआ। पहरे-[illegible] कर पकड़ लिया। फिर गाली

तया हि भय तज्जितो, मैं इसी बार प्रवेश करने से भी भयभीत हो गया; मरण भय से त्रास को तथा उद्विग्नता को प्राप्त हुआ।

इतना कह और वहाँ से भाग फिर उस अथवा अन्य किसी भी हाथी के शरीर को खड़े होकर देखा तक नहीं। उस के बाद से लोभ के वशीभूत नहीं हुआ।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला कर कहा—भिक्षुओ, अन्दर जो मैल पैदा हो जाए उस चित्त के मैल को बढ़ने न देकर वहीं निग्रह करना चाहिए। इतना कह आर्य-सत्यों का प्रकाशन कर, जातक का सारांश निकाला। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह पाँच सौ भिक्षु अर्हत् हो गए। शेष में से कुछ स्रोतापन्न, कुछ सकृदागामी तथा कुछ अनागामी हुए।

उस समय सियार तो मैं ही था।

१४९. एकपण्ण जातक

"एक पण्णो अयं रुक्खो..." यह शास्ता ने वैशाली के पास महावन की कूटागार शाला में रहते हुए वैशाली के एक दुष्ट-स्वभाव लिच्छवि-कुमार के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय वैशाली में गावुत गावुत[1] की दूरी पर तीन प्राकारें बनी थीं। तीनों स्थानों पर गोपुर थे, अट्टालिकाएँ थीं तथा कोठे थे। इस प्रकार वह नगर [illegible] था।

---

[1] [illegible] २ मील [illegible]।

जाते हैं। रोग से मुक्त न हो सकने के कारण नित्य दुखी रहते हैं। इसलिए सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भावना रखनी चाहिए। सभी का हित-चिन्तक होना चाहिए। सभी के प्रति कोमल चित्त वाला होना चाहिए। क्योंकि इस प्रकार का (क्रोधी) आदमी नरक आदि के भय से मुक्त नहीं होता।

वह कुमार शास्ता का एक ही उपदेश सुनकर मान-रहित हो गया, शान्त इन्द्रिय हो गया, क्रोध-रहित हो गया; मैत्री-चित्त वाला हो गया तथा कोमल चित्त का हो गया। उसे कोई गाली देता, मारता तो भी वह उसकी ओर रुककर न देखता। वह ऐसा साँप हो गया जिसके दाँत उखाड़ दिए गए हों, ऐसा केकड़ा हो गया जिसके डंक जाते रहे हों, ऐसा बैल हो गया जिसके सींग न हों।

उसका समाचार जानकर भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! दुष्ट लिच्छवि कुमार को चिर काल तक उपदेश देते रहकर भी न माता पिता न रिश्तेदार-मित्र आदि ही उसे विनीत बना सके। सम्यक् सम्बुद्ध ने उसे एक ही उपदेश से ऐसा कर दिया जैसे किसी मस्त हाथी को शान्त कर दिया हो। यह ठीक ही कहा गया है—भिक्षुओ! हाथी-दमन करने वाला जब हाथी को दमन करता है तो दमन किया हुआ हाथी एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम दिशा में, चाहे उत्तर दिशा में अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, घोड़ा-दमन करनेवाला जब घोड़े को दमन करता है तो दमन किया हुआ घोड़ा एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम में, चाहे उत्तर में, अथवा दक्षिण में। भिक्षुओ, बैल को दमन करने वाला जब उसे दमन करता है, तो दमन किया हुआ बैल एक ही दिशा में दौड़ता है चाहे पूर्व दिशा में, चाहे पश्चिम में, चाहे उत्तर में अथवा दक्षिण में। लेकिन भिक्षुओ, जिसे तथागत अर्हत्‌सम्यक् सम्बुद्ध शिक्षित करते हैं वह आठ दिशाओं में जाता है रूपवान रूपों को देखता है, यह एक दिशा है... सञ्ज्ञा तथा वेदना का जो निरोध है उसे प्राप्त कर विचरता है, यह आठवीं दिशा है। वह शिक्षकों में अनुपम पुरुष-दमन-सारथि कहलाते हैं।[1] आयुष्मानो! सम्यक् सम्बुद्ध के समान पुरुषों का दमन करनेवाला सारथि नहीं है।

---

[1] मज्झिम निकाय (३)

"हम राजकुल में आने जाने वाले नहीं हैं, हम हिमवन्त-निवासी हैं।"

आमात्य ने जाकर राजा से यह बात कही। राजा बोला—हमारे यहाँ आने जाने वाला कोई भिक्षु नहीं है। उन्हें जाकर ले आओ।

आमात्य ने जा बोधिसत्व को प्रणाम कर, प्रार्थना कर, साथ लिवा राज-भवन में पहुँचाया।

राजा ने बोधिसत्व को प्रणाम कर, श्वेत छत्र लगे हुए सोने के सिंहासन पर बिठा, अपने लिए तैयार किए गए नाना प्रकार के भोजन खिलाकर पूछा—'भन्ते! कहाँ रहते हैं?'

'महाराज! हम हिमवन्त-निवासी हैं।'

'अब कहाँ जा रहे हैं।"

'महाराज! वर्षा-ऋतु के अनुकूल निवास स्थान की खोज है।'

'तो भन्ते! हमारे ही उद्यान में रहें।'

उनसे स्वीकृति ले अपना भी भोजन समाप्त कर राजा बोधिसत्व के साथ उद्यान गया। वहाँ पर्णशाला बनवा, उसमें रात के रहने योग्य तथा दिन में रहने योग्य स्थान तैयार करवा, प्रव्रजितों की आवश्यकताएँ दे, उनकी सेवा आदि के लिए उद्यानपाल को भार सौंप स्वयं नगर को लौटा। उस समय से बोधिसत्व उद्यान में रहने लगे। राजा भी दिन में दो तीन बार उनकी सेवा में जाता।

उस राजा का दुष्ट कुमार नाम का पुत्र था। वह क्रोधी था, कठोर था। न उसे राजा ही विनीत बना सका, न सारे रिश्तेदार। आमात्यों और ब्राह्मण गृहपतियों ने क्रुद्ध होकर इतना कहा कि 'हे स्वामी! ऐसा न करें। ऐसा न कर सकेंगे।' इतने से भी वह उसे कुछ न समझा सके।

राजा ने सोचा मेरे शीलवान् तपस्वी के अतिरिक्त कोई दूसरा इस कुमार को विनीत नहीं बना सकता।

वह कुमार को बोधिसत्व के पास ले गया और उन्हें सौंपते हुए कहने लगा —भन्ते! यह कुमार क्रोधी है, कठोर स्वभाव का है। हम इसे विनीत नहीं कर सकते। आप इसे किसी ढंग से शिक्षा दें। इतना कह चला गया।

बोधिसत्व ने कुमार के साथ उद्यान में घूमते हुए नीम का एक पौदा देखा जिसके एक ओर एक पत्ता, दूसरी ओर दूसरा पत्ता—इस प्रकार कुल दो पत्ते थे। बोधिसत्व ने कुमार से कहा—कुमार! इस पौदे के पत्ते खाकर इसका

शास्ता ने यह धर्म-देशना सुना "भिक्षुओ! मैंने केवल अभी इस दुष्ट लिच्छवि कुमार को सीधा नहीं किया, पहले भी सीधा किया है" कह जातक का मेल बैठाया।

उस समय दुष्ट कुमार यह लिच्छवि कुमार था। राजा आनन्द था। उपदेश देनेवाला तपस्वी मैं ही था।

१५०. सञ्जीव जातक

"असन्तं यो पग्गण्हाति ..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय अजातशत्रु राजा द्वारा किए गए दुर्गुणी के आदर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने बुद्ध के विरोधी, दुराचारी, पापी देवदत्त के प्रति श्रद्धावान् हो, उस दुष्ट असत्पुरुष को ऊँचा स्थान दे उसका आदर करने की इच्छा से बहुत सा धन खर्च करके गयासीस पर एक विहार बनवा दिया। उसी की बात मान पिता को जो कि स्रोतापन्न आर्य-श्रावक था मरवा डाला। इस प्रकार अपने स्रोतापन्न होने की सम्भावना में बाधा डाल विनाश को प्राप्त हुआ।

जब उसने सुना कि देवदत्त को जमीन निगल गई तो उसे डर हुआ कि कहीं उसे भी जमीन न निगल जाए। भयभीत होने से उसका राज्य-सुख जाता रहा। शय्या पर लेटता तो उस शयन में मजा न आता। तीव्र वेदना से पीड़ित हाथी के बच्चे के समान इधर उधर टहलता। उसे ऐसा दिखाई देने लगा जैसे पृथ्वी फट गई हो, उसमें से अवीचि-ज्वालाएँ[1] निकल रही हों, और पृथ्वी

[1] अवीचि नरक से निकलने वाली ज्वाला।

उनके साथ साड़े बारह सौ भिक्षु हैं। उन भगवान् की इस प्रकार की कीर्ति है कि वह अर्हत हैं. . . .इस प्रकार नौ तरह[1] के गुण हैं, यह और उनके जन्म के समय से पूर्व-निमित्त आदि भेद तथा भगवान् के प्रताप को प्रकाशित कर कहा कि देव! उन भगवान् बुद्ध का सत्संग करें, धर्म सुनें तथा शंकाएँ मिटाएँ।

राजा का मनोरथ पूरा हुआ। वह बोला—सौम्य! जीवक! हाथियों को सजवाओ। हाथियों को सजवा बड़े राजसी ठाट-बाट से जीवक के आम्रवन में पहुँच राजा ने देखा सुगन्धित बड़े भवन में तथागत भिक्षु संघ से घिरे बैठे हैं। जैसे महान् सरोवर हो, किन्तु उसकी लहरें शान्त हों, वैसे ही भिक्षु-संघ को इधर उधर से देखकर राजा ने सोचा—ऐसी शान्त परिषद् तो मैंने इससे पहले कभी देखी ही नहीं। उसने भिक्षु-परिषद् के उठने-बैठने के तरीके से ही प्रसन्न हो संघ को प्रणाम किया। फिर संघ की स्तुति करते हुए उसने भगवान् को प्रणाम किया और एक ओर बैठकर श्रमणत्व के फल के बारे में प्रश्न किया। भगवान् ने उसे दो भाणवारों में विस्तार करके सामञ्ञफल सूत्र[2] का उपदेश दिया। सूत्र का उपदेश हो चुकने पर वह प्रसन्न हो भगवान् से क्षमा माँग आसन से उठकर चला गया।

राजा के चले जाने के थोड़ी ही देर बाद बुद्ध ने भिक्षुओं को बुलाकर कहा—भिक्षुओ, यह राजा जख्मी होगया समझो। भिक्षुओ, राजा को आहत हो गया समझो। यदि यह ऐश्वर्य के लोभ में पड़कर अपने धार्मिक, धर्म से राज्य करने वाले पिता को जान से न मरवाता; तो इसे इसी आसन पर रज रहित, मल-रहित धर्म-चक्षु, उत्पन्न हो जाता। देवदत्त के कारण, दुष्ट को बड़ा स्थान देने से वह स्रोतापत्ति फल को न प्राप्त कर सका।

किसी दूसरे दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—'आयुष्मानो! अजातशत्रु ने दुष्ट का आदर करके, दुश्चरित्र, पापी देवदत्त की प्रेरणा से पितृ-

---

[1] इति पि सो भगवा, [1]अरहं, [2]सम्मासम्बुद्धो, [3]विज्जाचरणसम्पन्नो, [4]सुगतो, [5]लोकविदू, [6]अनुत्तरो पुरिसदम्मसारथि, [7]सत्था देवमनुस्सानं, [8]बुद्धो [9]भगवाति॥

[2] दीघ निकाय, (दूसरा सूत्र)।

[जो दुश्चरित्र को बड़प्पन देता है, जो दुराचारी की सगत करता है, उसे वह दुराचारी वैसे ही खा जाता है जैसे जीवन-प्राप्त व्याघ्र।]

असन्तं—तीन प्रकार[1] के दुश्चरित्र से युक्त, दुश्शील, पापी। यो पग्गण्हाति, क्षत्रिय आदि में जो कोई इस प्रकार के दुराचारी प्रव्रजित को चीवर आदि देकर अथवा गृहस्थ को उपराज वा सेनापति आदि का पद देकर बड़प्पन देता है, सत्कार तथा सम्मान प्रदर्शित करता है। असन्तञ्चुपसेवति, जो इस प्रकार के दुश्शील की संगति करता है। तमेव घासं कुरुते, उसी दुष्ट आदमी को, बड़प्पन देनेवाले को वह दुराचारी खा जाता है, नष्ट करता है। कैसे? व्यग्घो सञ्जीविको यथा, जैसे सञ्जीवक नाम के विद्यार्थी ने मृत-व्याघ्र को मन्त्र पढ़कर जिलाया, जीवन-दान दे आदृत किया। उसने उस जीवन-दान देनेवाले सञ्जीवक का ही प्राण ले लिया। इस प्रकार जो कोई भी दुष्ट आदमी का आदर करता है, वह दुष्ट अपना आदर करनेवाले ही को नष्ट करता है। इस तरह दुष्टों को बड़प्पन देनेवाले नाश को प्राप्त होते हैं।

बोधिसत्त्व इस गाथा द्वारा विद्यार्थियों को उपदेश दे दानादि पुण्य करके कर्मानुसार परलोक सिधारे। शास्ता ने भी यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय मृत-व्याघ्र को जिलानेवाला विद्यार्थी अजातशत्रु था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य तो मैं ही था।

---

[1] काय, वाक् तथा मन के पाप-कर्म।

हुए चार अगतियों[1] से बचकर दस राजधर्मों से विरुद्ध न जा धर्मानुसार राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरनेवाले हुए।

इतना कह राजा के प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व उसकी पटरानी की कोख में रह गर्भ की सम्यक् रक्षा होने पर माता की कोख से बाहर निकले। नाम-करण के दिन उनका नाम ब्रह्मदत्तकुमार ही रक्खा गया।

क्रम से बढ़ते हुए सोलह वर्ष की आयु होने पर वह तक्षशिला जाकर सब शिल्पों में निष्णात हो पिता के मरने पर राजा हो धर्म से तथा न्याय से राज्य करने लगा। राग आदि के वशीभूत न हो वह मुकद्दमों का फैसला करता। उसके धर्म से राज्य करने से अमात्य भी धर्म से ही व्यवहारों (=मुकद्दमों) का फैसला करते। मुकद्दमों का धर्म से फैसला होने के कारण झूठे मुकद्दमे करनेवाले भी नहीं रहे। उनके न होने से राजाङ्गण में मुकद्दमे करनेवालों का शोर नहीं होता था। अमात्य सारा दिन न्यायालय में बैठे रहकर भी जब किसी को मुकद्दमा लिए आता न देखते तो उठकर चले जाते। न्यायालय खाली कर देने योग्य हो गए।

बोधिसत्त्व सोचने लगे कि मेरे धर्मानुसार राज्य करने के कारण मुकद्दमा करने वाले नहीं आते। शोर नहीं होता। न्यायालय छोड़ने योग्य हो गए। अब मुझे अपने दुर्गुणों की खोज करनी चाहिए। जब मुझे यह पता लग जाएगा कि यह यह मेरे दुर्गुण हैं तो उन्हें छोड़कर गुणवान बनकर ही रहूँगा।

उसके बाद से वह खोजने लगे कि कोई मेरे दोष कहने वाला है? उन्हें महल के अन्दर कोई ऐसा नहीं मिला जो उनके दोष कहे। जो मिला प्रशंसा करने वाला ही मिला। 'यह मेरे भय से भी केवल मेरी प्रशंसा ही करते होंगे' सोच महल के बाहर रहने वालों की परीक्षा की। वहाँ भी कोई न मिला, तो नगर के अन्दर खोज की। नगर के बाहर चारों दरवाजों पर स्थित गाँवों में

---

[1] छन्द, द्वेष, भय तथा मोह के वशीभूत हो पक्षपात करना।

जगह दी जायगी। उसने पूछा—सारथि! तुम्हारे राजा का सदाचार कैसा है?"

उसने अपने राजा के दुर्गुणों को भी गुण बताते हुए कहा कि हमारे राजा में यह गुण है, यह गुण है; और यह गाथा कही—

> दळ्हं दळ्हस्स खिपति मल्लिको मुदुना मुदुं
> साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना,
> एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि॥

[मल्लिक कठोर के साथ कठोरता का व्यवहार करता है, कोमल के साथ कोमलता का। भले आदमी को भलाई से जीतता है, बुरे को बुराई से। सारथि! यह राजा ऐसा है। तू मार्ग छोड़ दे।]

दळ्हं दळ्हस्स खिपति, जो बहुत कठोर होता है उसे कठोर वचन से वा प्रहार से ही जीतना चाहिए। ऐसे आदमी के प्रति यह कठोर व्यवहार करता है अथवा कठोर वचन का प्रयोग करता है। इस प्रकार कठोर होकर ही उसे जीतता है—यही प्रगट करता है। मल्लिको, उस राजा का नाम है। मुदुना मुदुं, कोमल स्वभाव वाले को स्वयं भी कोमल होकर जीतता है। साधुम्पि साधुना जेति असाधुम्पि असाधुना, जो सज्जन हैं, उनके प्रति स्वयं भी सज्जन बनकर उन्हें सज्जनता से और जो दुर्जन हैं उनके प्रति स्वयं भी दुर्जन बनकर उन्हें दुर्जनता से जीतता है। एतादिसो अयं राजा, इस हमारे कोसल राजा का ऐसा सदाचरण है। मग्गा उय्याहि सारथि, अपने रथ को लौटाकर छोटे रस्ते में आ। हमारे राजा को रास्ता दे।

तब बाराणसी राजा के सारथि ने पूछा—"भो! क्या तुमने अपने राजा के गुण कह दिए?"

"हाँ।"

"यदि यही गुण हैं, तो अवगुण कैसे होंगे?"

"अवगुण! यह अवगुण ही सही। तुम्हारे राजा में कौन से गुण हैं?"

"अच्छा तो सुनो" कह दूसरी गाथा कही—

अक्कोधेन जिने कोधं, असाधुं साधुना जिने
जिने कदरियं दानेन सच्चेन अलिकवादिनं,
एतादिसो अयं राजा मग्गा उय्याहि सारथि[1] ॥

[क्रोधी को अक्रोध से जीतता है। बुरे को भलाई से। कंजूस को द
से। झूठे को सत्य से। यह राजा ऐसा है। इसलिए सारथि ! तू म
छोड़ दे।]

एतादिसो, इन अक्कोधेन जिने कोधं आदि कहे गए गुणों से युक्त। क्रोधी आदमी को स्वयं शान्त रहकर अक्रोध को जीतता है। असाधु को स
भला होकर साधुता से। कदरियं, अत्यन्त कंजूस को स्वयं दाता बनकर दान
अलिक वादिनं, झूठ बोलनेवाले को स्वयं सत्यवादी बनकर। सच्चेन जिन
मित्र सारथि ! मार्ग से हट जा। इस प्रकार के सदाचार से युक्त हमारे रा
को मार्ग दे। हमारा राजा ही मार्ग पाने के योग्य है।

ऐसा कहने पर मल्लिक राजा तथा उसके सारथि, दोनों ने उतर
घोड़ों को खोल रथ को हटा वाराणसी के राजा को मार्ग दिया। वारा
राजा ने मल्लिक राजा को उपदेश दिया कि राजा को यह यह करना चाहि
फिर वाराणसी जा वहाँ दानादि पुण्य-कर्म करके जीवन समाप्त होने पर स
मार्ग ग्रहण किया।

मल्लिक राजा ने भी उसका उपदेश ग्रहण कर जनपद में जा अपने
बताने वाले को बिना खोजे ही अपने नगर पहुँच दानादि पुण्य-कर्म करके
को प्रयाण किया।

शास्ता ने कोसल-नरेश को उपदेश देने के लिए यह धर्म-देशना ला जा
का मेल बैठाया।

उस समय मल्लिक राजा का सारथि मोग्गल्लान था। राजा आनन्द था
वाराणसी राजा का सारथि सारिपुत्र था। राजा तो मैं ही था।

---

[1] धम्मपद (१०।३)।

चीत करता है। मैं इस प्रकार की बात चीत सुनकर जीकर ही क्या करूँगी? साँस रोक कर मर जाऊँगी।"

फिर उसने सोचा—

"मेरा इस प्रकार यूँ ही मरना ठीक नहीं। मेरे भाई आते हैं। उन्हें कहकर मरूँगी।"

सियार को भी जब उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला तो उसने सोचा यह मुझसे सम्बन्ध नहीं करेगी। वह अफसोस करता हुआ स्फटिक गुफा में जाकर पड़ रहा।

एक सिंह बच्चा भैंस या हाथी में से किसी को मार मांस खा, बहन का हिस्सा लाकर बोला—"मांस खा।"

"भाई! मैं मांस नहीं खाऊँगी। मैं मरूँगी।"

"क्यों?"

उसने वह हाल कहा।

"अब वह सियार कहाँ है?"

उसने स्फटिक गुफा में पड़े हुए सियार को आकाश में है समझा और बोली—"भाई! क्या नहीं देखते हो? यह रजत पर्वत पर आकाश में स्थित है।"

सिंह बच्चा नहीं जानता था कि वह स्फटिक गुफा में लेटा है। उसने उसे आकाश में लेटा हुआ समझ सोचा "इसे मारूँगा" और सिंह-वेग के साथ उछल कर, स्फटिक गुफा पर छाती से चोट की। उसका हृदय फट जाने से वह मर कर वहीं गिर पड़ा।

अब दूसरा आया। उसने उसे भी वैसा ही कहा। उसने भी वैसा ही किया और मरकर पर्वत के नीचे गिर पड़ा। इस प्रकार छहों भाइयों के मरने पर सबसे अन्त में बोधिसत्त्व आये। उसने उन्हें भी वह हाल कहा और यह पूछने पर कि अब वह कहाँ है बताया कि वह रजत पर्वत पर आकाश में लेटा है।

बोधिसत्त्व ने सोचा—सियार आकाश में नहीं ठहर सकते। वह स्फटिक गुफा में पड़ा होगा। वे पर्वत के नीचे उतरे तो देखा कि छहों भाई मरे पड़े हैं। वे समझ गये कि अपनी मूर्खता के कारण विचार न कर सकने के कारण सिंह-

[सिंह ने सिंह नाद से गुफा को गुँजा दिया । गुफा में रहने वाले सियार ने जब सिंह की आवाज सुनी तो वह डर कर त्रास को प्राप्त हुआ और उसका हृदय फट गया ।]

सीहो, सिंह चार प्रकार के होते हैं (१) तृण-सिंह (२) पाण्डु-सिंह (३) काळ-सिंह (४) लाल हाथ पैर वाला केसरी । उनमें से यहाँ केसरी सिंह से ही मतलब है । ददृरं अभिनादयि सो बिजलियों के शब्द से भी अधिक सिंहनाद से उस रजत पर्वत को निनादित कर दिया, गुँजा दिया । ददृरे वसं, स्फटिक मिले रजत पर्वत पर रहते हुए । भीतो सन्तासमापादि मृत्यु-भय से डरकर चित्त-त्रास को प्राप्त हुआ । हृदय चस्स अप्फलि, उस भय से उसका हृदय फट गया ।

इस प्रकार सिंह उस सियार का प्राणान्त कर, भाइयों को एक जगह छिपाकर बहन को उनके मरने का वृत्तान्त कह, उसे दिलासा दे जन्म भर काञ्चन गुफा में ही रह कर्मानुसार परलोक सिधारा ।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों का प्रकाशन हो चुकने पर उपासक स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ ।

उस समय सियार नाई का लड़का था । सिंह-बच्ची लिच्छवि-कुमारी, छः छोटे भाई कोई स्थविर हुए । ज्येष्ठ-भ्राता सिंह तो मैं ही था ।

१५३. सूकर जातक

"चतुप्पदो अहं सम्म ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक बूढ़े स्थविर के बारे में कही ।

१५४. उरग जातक

"उपुरगान पवरो पविट्ठो. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय श्रेणियों[1] के सघ कलह के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा के दो सेवक श्रेणियों के प्रधान थे। वे दोनों महामात्य एक दूसरे को जहाँ कहीं देखते झगड़ा करते। उनके बैर की बात सारे नगर में फैल गई। न राजा और न उनके रिश्तेदार तथा मित्र उनका झगड़ा मिटा सके।

एक दिन प्रात काल शास्ता ने उन आदमियों का विचार करते हुए जिनके ज्ञानी होने की सम्भावना थी इन दोनों के स्रोतापन्न होने की सम्भावना को देखा। किसी एक दिन वे श्रावस्ती में भिक्षाचार करते हुए उनमें से एक के घर के दरवाजे पर खड़े हुए।

उसने बाहर निकल पात्र ले शास्ता को घर के अन्दर ले जा आसन बिछा कर बिठाया। शास्ता ने बैठते ही उसे मैत्री-भावना की महिमा समझाई जब उसका चित्त कुछ कोमल हुआ देखा तो आर्य्य-सत्यों को प्रकाशित किया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर वह स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

शास्ता ने जब देखा कि वह स्रोतापन्न हो गया तो उसी के हाथ में पात्र रखने देकर उसे साथ ले दूसरे के घर पर पहुँचे। उसने भी बाहर निकल शास्ता को प्रणाम कर 'भन्ते ! घर में प्रवेश करें' कह घर में ले जाकर बिठाया।

---

[1] शिल्पियों के सघ।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता को राजकाराम में चारों-प्रकार की परिषद में बैठे धर्मोपदेश करते समय छींक आई। भिक्षुओं ने जोर से, ऊँचे स्वर से कहा—"भन्ते! भगवान्! जीएँ। सुगत! जीएँ।" उनके चिल्लाने से धर्मोपदेश में विघ्न पड़ा। भगवान् ने भिक्षुओं से पूछा—

"भिक्षुओ, यदि किसी के छींकने पर 'जीएँ' कहा जायगा, तो क्या उस कहने से उसके जीने मरने पर कुछ प्रभाव पड़ेगा?"

"भन्ते! नहीं।"

"भिक्षुओ! छींकने पर "जीएँ" नहीं कहना चाहिए। जो कहे उसे दुक्कट का दोष लगेगा।"[1]

उन दिनों भिक्षुओं को छींक आने पर लोग कहा करते—"भन्ते! जीएँ।" भिक्षु बुरा मानते और कुछ न बोलते। लोग खीझ उठते—कैसे हैं यह श्रमण शाक्य-पुत्रीय जो "भन्ते! जीएँ" कहने पर कुछ नहीं बोलते। भगवान् से यह बात कही गई। भगवान् ने कहा—"भिक्षुओ! गृहस्थ लोग मंगल-अमंगल को मानने वाले हैं। भिक्षुओ! गृहस्थ लोगों के 'भन्ते जीएँ' कहने पर 'चिरकाल तक जीते रहो' कहने की अनुज्ञा देता हूँ।"

भिक्षुओं ने भगवान् से पूछा—भन्ते! 'जीओ', तथा 'जीते रहो' यह कहने की प्रथा कब से आरम्भ हुई? शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह 'जीओ' तथा 'जीते रहो' कहने की प्रथा पुराने समय में आरम्भ हुई। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी देश में एक ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। उनका पिता व्यापार करके गुजारा करता था। उसने सोलह वर्ष के बोधिसत्व से मोती आदि की चीजें उठवा ग्राम निगम आदि में घूमते हुए वाराणसी पहुँचकर द्वारपाल के घर पर भोजन

---

[1] विनय-पिटक में यह शिक्षापद नहीं मिला।

यक्ष ने बोधिसत्त्व का वचन सुन सोचा कि इस माणवक ने 'जीवें' कहा है, इसलिए इसे नहीं खा सकता। इसके पिता को खाऊँगा। इसलिए पिता के पास गया। उसने उसे आते देख सोचा, यह यक्ष उन लोगों को खा लेता होगा, जो 'जीवें' के उत्तर में 'जीओ' न कहते होंगे। इसलिए मैं प्रतिवचन करूँगा। उसने पुत्र के बारे में दूसरी गाथा कही—

> त्वम्पि वस्स सतं जीव अपरानि च वीसतिं,
> विसं पिसाचा खादन्तु जीव त्वं सरदोसतं॥

[तू भी सौ वर्ष जीवित रह। और भी बीस वर्ष। पिशाच विष खाएँ। तू सौ वर्ष जीवित रह।]

विसं पिसाचा, पिशाच हलाहल विष खाएँ।

यक्ष ने उसकी बात सुन सोचा, मैं दोनों में से किसी को नहीं खा सकता। वह रुक गया।

बोधिसत्त्व ने पूछा—'भो यक्ष! इस शाला में प्रवेश करनेवाले आदमियों को तू क्या खाता है?'

"बारह वर्ष कुबेर की सेवा करके अधिकार प्राप्त किया है।"

"क्या सभी को खाने का अधिकार है?"

"'जीव' और 'जीओ' कहने वालों को छोड़ शेष सभी को खाता हूँ।"

"यक्ष! तूने पहले बुरे कर्म किए। इसलिए तू निर्दयी, कठोर तथा दूसरों की हिंसा करनेवाला पैदा हुआ। अब फिर उसी तरह के काम करके तू 'अन्धकार-परायण'[1] हो रहा है। इसलिए अब से तू प्राणि-हिंसा आदि से विरत हो।"

इस प्रकार उस यक्ष का दमन कर, नरक के भय से उसे डरा, पञ्चशीलों में प्रतिष्ठित कर यक्ष को दूत की तरह विनीत कर दिया।

प्रातः होकर आने जाने वाले मनुष्यों ने यक्ष को देखा और जब उन्हें मालूम हुआ कि बोधिसत्त्व ने उसका दमन किया, तो उन्होंने राजा से कहा—"देव!

---

[1] अन्धकार से अन्धकार में जाने वाला—हीनकुल में पैदा होकर नीच कर्म करने वाला।

नहीं लेकर दिया था ? अब इस प्रकार के शासन में प्रव्रजित होकर क्यों हिम्मत हारता है ?" इतना कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय वाराणसी के समीप ही बढ़ई-ग्राम था । वहाँ पाँच सौ बढ़ई रहते थे ।

वह नौका से नदी के स्रोत के ऊपर की तरफ जाते । वहाँ जंगल में घर बनाने की लकड़ी काटकर वहीं एक तल्ले तथा दो तल्ले के मकान बना, खम्भे से प्रारम्भ करके सभी लकड़ियों पर चिह्न लगाते । फिर उन्हें नदी के किनारे ले जा, नौका पर चढ़ा, स्रोत के अनुसार चल नगर में आते । वहाँ जो जैसे घर चाहता उसे वैसे बना देकर कार्षापण ले फिर वैसे ही जा घर के सामान लाते।

उनके इस प्रकार जीविका चलाते हुए एक बार पड़ाव डालकर लकड़ी काटते समय उनके पास ही एक हाथी का पाँव खैर की लकड़ी के खूँटे पर पड़ा। उस खूँटे से उसका पाँव बिंध गया और उसमें बड़ी पीड़ा होने लगी । पैर सूज गया । उसमें से पीप बहने लगा ।

पीड़ा से पीड़ित हाथी ने उनके लकड़ी काटने का शब्द सुनकर सोचा कि इन बढ़इयों से मेरा कल्याण होगा । ऐसा समझ कर वह तीन पैरों से चलकर उनके पास पहुँचा और उनके नजदीक ही पड़ रहा ।

बढ़इयों ने उसका सूजा हुआ पैर देखा तो पास गए । उन्हें उसमें खूँटा दिखाई दिया । उन्होंने तेज कुल्हाड़ी से खूँटे के चारों ओर गहरा निशान कर, उसमें रस्सी बाँधकर उसे खींचकर निकाला । फिर पीप निचोड़कर निकालकर गर्म पानी से धोया । उसके अनुरूप दवाई करने से थोड़े ही समय में पाँव ठीक हो गया।

हाथी ने निरोग होकर सोचा —इन बढ़इयों ने मेरी जान बचाई । मुझे इनका उपकार करना चाहिए । उस दिन से वह बढ़इयों के साथ वृक्ष लाने लगा । [illegible] सामान रखता । कुल्हाड़ी [illegible] सिर का [illegible] देता । बढ़ई [illegible] जाते ।

[illegible] था सफेद [illegible] बढ़इयों

"अरे ! मैं लकड़ी के लिए नहीं आया। मैं तो इस हाथी के लिए आया हूँ।"

"देव ! पकड़वा कर ले जाएँ।"

हाथी-बच्चे ने जाना नहीं चाहा।

"अरे, हाथी क्या करता है ?"

"देव ! जिससे बढ़इयों का पोषण हो, वह लाना है।"

राजा ने "अच्छा, भाई !" कहा और हाथी की सूण्ड के पास पूँछ के पास, और चारों पैरों के पास एक एक लाख कार्षापण रखवाए। हाथी इतने पर भी नहीं गया। सब बढ़इयों को दुशाले तथा बढ़इयों की स्त्रियों को पहनने के वस्त्र मिलने पर तथा साथ खेलनेवाले लड़कों के पालन-पोषण का प्रबन्ध होने पर वह बढ़इयों को पीछे आने न दे, स्त्रियों और लड़कों को देखता हुआ राजा के साथ चला गया।

राजा उसे लेकर नगर गया। वहाँ नगर और हस्ति-शाला को अलंकृत करवाया। हाथी को नगर की प्रदक्षिणा करवा हस्ति-शाला में ले जाया गया। सभी तरह के गहने पहना, अभिषेक कर उसे राजा की खास सवारी बनाया। फिर उसे अपना मित्र घोषित कर आधा राज्य हाथी को दे दिया। राजा ने उसे अपने बराबर का दर्जा दिया।

हाथी के आने के समय से सारे जम्बू द्वीप का राज्य राजा के हाथ में आया जैसा ही हो गया।

इस प्रकार समय गुजरता गया। बोधिसत्व ने उस राजा की पटरानी की कोख में प्रवेश किया। उसके गर्भ के पूरे होते होते राजा मर गया। लोगों ने सोचा कि यदि हाथी को राजा के मरने की बात का पता लगेगा तो उसका हृदय फट जायगा। इस लिए वह हाथी से राजा के मरने की बात को गुप्त रखकर उसकी सेवा करते रहे।

पड़ोसी के कोसल राजा ने जब सुना कि वाराणसी-नरेश मर गया तो उसने राज्य को खाली देख बड़ी सेना ला नगर घेर लिया। नगर-निवासियों ने नगर के दरवाजे बन्द कर कोसल-राजा के पास सन्देश भेजा —

"हमारे राजा की पटरानी गर्भवती है। अंग विद्या के जानने वालों का कहना है कि इस से सातवें दिन पुत्र होगा। यदि वह पुत्र का जन्म होगी तो हम

[यदि मित्र दुर्बल है, लेकिन यह मित्र के कर्तव्य को पूरा करता है तो वही रिश्तेदार है, बन्धु है, मित्र है, सखा है ! सिंहनी ! अपमान मत कर । सियार मेरे प्राणों की रक्षा करने वाला है ।]

यदि चेपि, एक 'अपि' जोर डालने के लिए है, दूसरा 'अपि' सम्भावना प्रकट करता है । अन्वय इस प्रकार है—दुब्बलो चेपि मित्तो मित्तधम्मेसु यदि तिट्ठति, यदि स्थिर रह सकता है । सो आतको च बन्धु च सो, मैत्री चित्त होने से मित्तो । सो च मे सहायक होने से सखा । दाठिनि ! मातिमञ्ञित्थो, मद्दे ! दाढ़ वाली ! सिंहनी ! मेरे मित्र अथवा मेरी सखी का अपमान न कर । यह सिगालो मम पाणदो ।

उसने सिंह की बात सुन सियारनी से क्षमा माँगी । फिर उसके तथा उसके बच्चो के साथ मिल जुल कर रहने लगी । सिंह-बच्चे भी सियार के बच्चों के साथ खेलते हुए मौज करते हुए रहने लगे । माता पिता के मरने पर भी मैत्री बनाए रख मिलजुल कर रहे । सात पीढ़ी तक उनकी मैत्री बराबर बनी रही ।

शास्ता ने यह धर्म देशना ला आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया । सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर कोई श्रोतापन्न, कोई सकृदागामी कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हुए ।

उस समय सियार आनन्द था । सिंह तो मैं ही था ।

१५८. सुहनु जातक

"नयिदं विसमसीलेन " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो भिक्षुओं के बारे में जिनका स्वभाव बड़ा उद्दण्ड था, कही ।

राजा को उससे सतोष न होता था। इस लिए उसने दूसरे भ्रमात्य को बुलाकर कहा—"तात ! तू घोडों की कीमत लगा। लेकिन कीमत लगाने से पहले महासोण को ऐसा कर कि वह इन घोडों में जाकर उन्हें काट कर जख्मी कर दे। जब वे दुर्बल हो जाये और उनका मूल्य घट जाए, तब उनकी कीमत लगाना।"

उसने 'अच्छा' कह स्वीकार कर वैसा ही किया। घोडों के व्यापारियों ने असन्तुष्ट हो, उसने जो किया वह बोधिसत्त्व से कहा।

बोधिसत्त्व ने पूछा—"क्या तुम्हारे नगर में दुष्ट घोडा नहीं है?"

"स्वामी ! सुहनु नाम का दुष्ट, चण्ड, कड़े स्वभाव का घोडा है।"

"अच्छा तो फिर आते समय उस घोड़े को लेते आना।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। फिर आते समय उस घोड़े को साथ लिवाकर आए।

राजा ने सुना कि घोड़ों के व्यापारी आए। उसने खिड़की खोलकर घोडों को देखा और महासोण को छुड़वा दिया। घोड़ों के व्यापारियों ने भी महासोण को आते देख सुहनु को छोडा। वे दोनों पास आने पर एक दूसरे का शरीर चाटने लगे। राजा ने बोधिसत्त्व से पूछा—"मित्र ! यह दो घोड़े दूसरों के प्रति चण्ड हैं, कड़े स्वभाव के हैं, दुस्साहसी हैं। दूसरे घोड़ों को काट कर रोगी कर देते हैं। लेकिन एक दूसरे के शरीर को चाटते हुए आनन्द-पूर्वक खड़े हैं। यह क्या बात है?"

बोधिसत्त्व ने उत्तर दिया, "महाराज ! यह परस्पर विरोधी स्वभाव के नहीं हैं, समान स्वभाव के हैं, समान धातु के हैं" और यह दो गाथाएँ कहीं—

नयिदं विसमसीलेन सोणेन सुहनुस्सह,
सुहनूपि तादिसोयेव यो सोणस्स स गोचरो ॥
पक्खन्दिना पगब्भेन निच्चं सन्दान खादिना,
समेति पापं पापेन समेति असता असं ॥

[सुहनु और सोण का स्वभाव विरोधी नहीं है। जैसा सुहनु है, वैसा ही सोण। उछल-कूद करने वाले, प्रगल्भ तथा हमेशा लगाम को खाने वाले इस घोड़े का पापकर्म और असत्कर्म दूसरे के बराबर है]।

[जो ब्राह्मण सब धर्मों के जानने वाले हैं, उन्हें मेरा नमस्कार है। वे मेरी रक्षा करें। बुद्धों को नमस्कार है। बोधि को नमस्कार है। विमुक्तों को नमस्कार है। विमुक्ति को नमस्कार है—वह मोर इसे अपनी रक्षा (का साधन) बना खोजता रहता था।]

ये ब्राह्मणा, जिन्होंने पापों को बहा दिया है, जो विशुद्ध होने से ब्राह्मण कहे गए हैं। वेदगू, जो वेद के पार गए वह भी वेदगू और वेद द्वारा जो पार गए वह भी वेदगू। यहाँ मतलब है कि जितने संस्कृत असंस्कृत धर्म हैं उन सभी को प्रकट करके गए इस लिए वेदगू। तभी कहा गया है—सब्बे धम्मे। सब स्कन्ध, आयतन, धातु, धर्मों को स्वलक्षण तथा सामान्य लक्षण की दृष्टि से अपने ज्ञान को प्रकट करके गए अथवा तीनों मारों के मस्तक को मर्दित कर दस सहस्र लोकधातु को उन्नादित कर बोधि-वृक्ष के नीचे सम्यक् सम्बुद्धत्व प्राप्त कर संसार के पार पहुँचे। ते मे नमो, वे मेरे इस नमस्कार को स्वीकार करें। ते च मं पालयन्तु इस प्रकार मुझसे नमस्कृत वे भगवान् मेरी पालना करें, रक्षा करें, हिफाजत करें। नमत्थु बुद्धानं नमत्थु बोधिया नमो विमुत्तानं नमो विमुत्तिया, यह मेरा नमस्कार अतीत में परिनिर्वाण को प्राप्त हुए बुद्धों को पहुँचे, उन्हीं की चार मार्गों तथा चार फलों का ज्ञान स्वरूप जो बोधि है उस बोधि को पहुँचे, उन्हीं की अर्हत्व-फल रूपी विमुक्ति को प्राप्त करने वाले विमुक्तों को पहुँचे, जो उनकी पाँच प्रकार की विमुक्ति है अर्थात् तदङ्ग विमुत्ति विक्खम्भन विमुत्ति, समुच्छेद विमुत्ति, पटिप्पस्सद्ध विमुत्ति, तथा निस्सरण विमुत्ति; उस विमुत्ति को भी पहुँचे। इमं सो परित्तं कत्वा मोरो चरति एसना, यह दो पद शास्ता ने बुद्धत्व प्राप्त करके कहे। इनका अर्थ है "भिक्षुओ वह मोर इसे परित्राण बना, उसे रक्षा का साधन बना अपनी गोचर-भूमि में फल-फूल के लिए नाना प्रकार से खोजता फिरता था।"

इस प्रकार दिन भर घूम कर शाम को पर्वत के शिखर पर बैठ डूबते हुए सूर्य को देख बुद्धगुणों का ध्यान कर निवास-स्थान की रक्षा के लिए फिर ब्रह्म-मन्त्र बाँधता हुआ 'अपेतय' आदि कहता—

"महाराज ! हाँ ! दण्डक हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरी रंग का मोर रहता है।"

"तो उसे बिना मारे, जीवित ही बाँध कर लाओ।"

शिकारी ने जाकर उसके घूमने की भूमि पर जाल फैलाया। मोर के आने की जगह पर भी जाल न कसा। शिकारी उसे न पकड़ सका। सात साल घूमते रह कर वह वहीं मर गया।

खेमा देवी की भी इच्छा पूरी न हुई। वह भी मर गई।

राजा को क्रोध आया कि मोर के कारण मेरी रानी की जान गई। उसने एक सोने के पट्टे पर लिखवाया—"हिमालय प्रदेश में दण्डक-हिरण्य नाम का पर्वत है। वहाँ सुनहरी रंग का मोर रहता है। जो उसका मांस खाते हैं वह अजर अमर हो जाते हैं।" उस सोने के पट्टे को उसने एक सन्दूकची में रखवा दिया।

उसके मरने पर दूसरे राजा ने उस स्वर्ण-पट्टे को पढ़कर अजर अमर होने की इच्छा से दूसरे शिकारी को भेजा। वह भी जाकर बोधिसत्व को न पकड़ सका। वहीं मर गया। इस प्रकार छ राज-पीढ़ियाँ गईं।

सातवें राजा ने राज्य पाकर एक शिकारी को भेजा। उसने जाकर देखा कि बोधिसत्व की चलने फिरने की जगह पर भी फंदा नहीं लगता। वह समझ गया कि अपनी रक्षा करके ही मोर चरने जाता है। वह देहात में आया और वहाँ से एक मोरनी ले, उसे ऐसी शिक्षा दी कि वह ताली बजाने पर नाचने लगती और चुटकी बजाने पर आवाज लगाती। ऐसा सिखा कर वह मोरनी को लेकर गया। प्रातःकाल ही जब अभी मोर ने परित्राण द्वारा अपने को रक्षित नहीं किया था उसने फंदे के खूँटे गाड़ फंदा फैला मोरनी से आवाज लगवाई। मोर ने जब मोरनी का असाधारण शब्द सुना तो कामासक्त हो परित्राण न कर सकने के कारण जाकर फंदे में फँस गया।

शिकारी ने उसे पकड़ ले जाकर वाराणसी के राजा को दिया। राजा ने उसका सौन्दर्य देख प्रसन्न हो उसे आसन दिलाया।

बोधिसत्व ने बिछे आसन पर बैठ, पूछा—"महाराज ! मुझे क्यों पकड़वाया ?"

"जो तेरा मांस खाता है वह अजर अमर हो जाता है। मैं तेरा मांस

राजा भी बोधिसत्व के उपदेशानुसार चल दान आदि पुण्य कर्म कर कर्मानुसार परलोक सिधारा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु अर्हत्व में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय राजा आनन्द था। सुनहरी रंग का मोर तो मैं ही था।

१६०. विनीलक जातक

"एवमेव नून राजानं..." यह शास्ता ने वेळुवन में रहते समय देवदत्त के बुद्ध की नकल करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

जब देवदत्त गया-शीर्ष पर गए हुए दोनों प्रधान श्रावकों के सामने बुद्ध का रंग-ढंग बनाकर लेट रहा, तो दोनों स्थविर धर्मोपदेश दे अपने शिष्यों को लेकर वेळुवन चले आए।

शास्ता ने पूछा—"सारिपुत्र! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया?"

"भन्ते! सुगत का रंग-ढंग दिखाकर महाविनाश को प्राप्त हुआ।"

"सारिपुत्र! न केवल अभी देवदत्त मेरी नक्ल करके विनाश को प्राप्त हुआ है, पहले भी प्राप्त हुआ है"। इतना कह पूर्वजन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में विदेह राष्ट्र में मिथिला में विदेहराज के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला

मिथिला में घर लेकर रहने वाला। आजञ्ञा, कारण, अकारण जानने वाले, यथा हंसा विनीलकं, जैसे यह हंस मुझ विनीलक को ढो रहे हैं, उसी प्रकार खींच रहे हैं।

हंस-बच्चों ने उसकी बात सुनी तो उन्हें क्रोध आया। उन्होंने सोचा इसे यहीं गिरा जायें। लेकिन फिर सोचा ऐसा करने से हमारा पिता हमें क्या कहेगा? उसकी निन्दा के डर से वे उसे पिता के पास ले गए और उसकी करतूत पिता से कही।

पिता को क्रोध आया। वह बोला—'क्या तू मेरे पुत्रों से बढ़कर है जो उनको नीचा दिखा रथ में जुतने वाले घोड़ों के समान बनाता है? अपनी बिसात नहीं जानता? यह स्थान तेरे योग्य नहीं है। जहाँ तेरी माँ रहती है, वहीं जा।' इस प्रकार धमका कर दूसरी गाथा कही—

विनील! दुग्गं भजसि अभूमिं तात! सेवसि,
गामन्तिकानि सेवस्सु एतं मातालयं तव॥

[विनील! तू दुर्ग में रहता है। तात! तू अयोग्य स्थान में रहता है। तू ग्राम के आसपास रह। वह तेरा मातृ-गृह है।]

विनील उसे नाम से बुलाता है। दुग्गं भजसि, इसके साथ गिरि-दुर्ग में रहता है। अभूमिं तात! सेवसि तात! गिरि विषम स्थान, तेरे लिए अयोग्य स्थान है। तू अभूमि में वास करता है। एतं मातालयं तव, यह ग्राम के सिरे पर जो कूड़ा फेंकने की जगह है तथा कच्चा श्मशान है वही तेरी माता का निवास-स्थान है। तू वहीं जा।

इस प्रकार उसे धमका कर पुत्रों को आज्ञा दी—जाओ, इसे मिथिला नगर की कूड़ा डालने की जगह पर ही उतार आओ। उन्होंने वैसा ही किया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय विनीलक देवदत्त था। दो हंस-बच्चे दो अग्र-श्रावक थे। पिता आनन्द था। विदेहराज तो मैं ही था।

'सचमुच आचार्य ! एक हाथी-बच्चा है, जिसकी माँ मर गई है, उसे पोस रहा हूँ।'

'हाथी बड़े होने पर पालन-पोषण करने वाले को ही मारते हैं, तू उसे मत पोस।'

'आचार्य ! उसके बिना नहीं रह सकता।'

'अच्छा ! तो पता लगेगा।'

उससे पोसा जाकर वह हाथी-बच्चा आगे चलकर बड़े भारी शरीर वाला हो गया।

एक समय वे ऋषिगण जंगल से फल-मूल लाने के लिए दूर चले गए और कुछ दिन वहीं रहे। हाथी को श्रेष्ठ दक्षिण हवा लगी तो उसका मद फूट पड़ा। उसने उस तपस्वी की पर्णकुटी नष्ट कर डाली। पानी का घड़ा फोड़ दिया। पत्थर का तख्ता फेंक दिया। आलम्बन-तख्ता¹ नोच डाला। फिर उस तपस्वी को मार डालकर ही जाने के विचार से एक घनी जगह में छिपकर उसके आने के रास्ते की ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

इन्दसमानगोत्त अपना फल-मूल ले, सबके आगे आगे आ रहा था। उसे देख वह साधारण स्वभाव से ही उसके पास गया।

हाथी ने घनी जगह से निकल, उसे सूण्ड से पकड़, जमीन पर गिरा, सिर पैर से दबा मार डाला। फिर उसे मसलता हुआ क्रौञ्चनाद करके जंगल में चला गया। शेष तपस्वियों ने बोधिसत्व से यह समाचार कहा। बोधिसत्व ने यह कहते हुए कि बुरे आदमी से दोस्ती नहीं करनी चाहिए, यह गाथा कही—

> न सन्थवं कापुरिसेन कयिरा
> अरियो अनरियेन पजानमत्थं
> चिरानुवुत्थो पि करोति पापं
> गजो यथा इन्दसमानगोत्तं ॥
> यं त्वेव जञ्ञा सदिसो ममं
> सीलेन पञ्ञाय सुतेन चापि

¹ जिसके सहारे से बैठ सकें।

मृगी को सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटते देखा, तो 'सत्पुरुष से मित्रता करने से बढ़कर कुछ नहीं है' सोच दूसरी गाथा कही—

न सन्थवस्मा परमत्थि सेय्यो
यो सन्थवो सप्पुरिसेन होति
सीहस्स ब्यग्घस्स च दीपिनो च
सामा मुखं लेहति सन्थवेन ॥

[सत्पुरुष से जो स्नेह होता है, उस स्नेह से बढ़कर श्रेष्ठ कुछ नहीं है। श्यामा मृगी स्नेह से सिंह, व्याघ्र और चीते का मुँह चाटती है।]

सामा मुखं लेहति सन्थवेन, श्यामा मृगी इन तीनों जनों का मैत्री से, स्नेह से मुँह चाटती है।

इस प्रकार कह बोधिसत्त्व हिमालय में चले गए। वहाँ ऋषियों की प्रव्रज्या ग्रहण कर अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर, मरने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय तपस्वी मैं ही था।

१६३. सुसीम जातक

"काळामिगा सेतदन्ता तव इमे · " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय छन्दकदान[1] के बारे में कही।

---

[1] वह दान जिसके देने में छन्द (vote) लिया गया हो।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में सुसीम नाम का राजा था। बोधिसत्व ने उसके पुरोहित की ब्राह्मणी की कोख से जन्म ग्रहण किया। सोलह वर्ष की आयु होने पर उसका पिता मर गया। जिस समय वह जीवित था उस समय वह राजा का हाथी-मङ्गल-कारक[1] था। हाथी को माङ्गलिक करने के स्थान पर जो सामान, माण्डे तथा हाथी के अलङ्कार आते, वह सब उसीको मिलते। इस प्रकार एक एक मङ्गलोत्सव में उसे करोड़ करोड़ धन मिलता।

उस समय हाथी-मङ्गलोत्सव आया। शेष ब्राह्मणों ने राजा के पास आकर कहा—"महाराज! हस्ति-मङ्गलोत्सव आया है। उत्सव करना चाहिए। पुरोहित-ब्राह्मण का लड़का बहुत छोटा है। वह न तीनों वेद जानता है, न हस्ती-सूत्र। हम हस्ती-मङ्गल करेंगे।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। ब्राह्मण प्रसन्न हो इधर उधर विचरते थे कि अब पुरोहित-ब्राह्मण के लड़के को हस्ती-मङ्गल न करने देकर हम हस्ती-मङ्गल करेंगे और धन लेंगे।

बोधिसत्व की माता ने जब यह सुना कि आज से चौथे दिन मङ्गल होगा तो वह यह मानकर रो पड़ी कि सात पीढ़ी से हाथी-मङ्गल करने का अधिकार हमारे वंश का रहा है। अब हमारा वंश पीछे पड़ जाएगा और हमें धन न मिलेगा।

बोधिसत्व ने पूछा, "माँ! तू क्यों रोती है?" उसने कारण बताया। तब बोधिसत्व ने कहा—"माँ, मैं मङ्गल करूँगा।"

"तात! न तू तीन वेद जानता है और न हस्ती-सूत्र। तू कैसे मङ्गल करेगा?"

"माँ! हस्ती-मङ्गल कब करेंगे?"

"तात! अब से चौथे दिन।"

"माँ! कहीं दूसरा अच्छा हस्ती-सूत्र का जानकार आचार्य कहाँ रहता है?"

---

[1] हाथी को माङ्गलिक करने की पूजा आदि करने वाला।

सोने की ध्वजाओं के साथ सुनहरी जालों से ढक कर खड़ा किया गया। राजाङ्गण अलङ्कृत हुआ। ब्राह्मण लोग प्रसन्नचित्त सजधज कर खड़े थे कि हम हस्ती-मङ्गल करेंगे, हम करेंगे। सुसीम राजा भी गहने और भाण्डे लिए आकर मङ्गल-स्थान पर खड़ा हुआ।

बोधिसत्व ने भी एक कुमार के लिए जिस ढंग से अलङ्कृत होना उचित है, उस तरह अलंकृत हो, अपनी परिषद का नेता बन राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज! क्या आपने सचमुच ऐसी बात कही है कि हमारे वंश को नाश करके, दूसरे ब्राह्मणों से हस्ती-मङ्गल करवा, हाथियों के अलङ्कार तथा दूसरे सामान उनको देंगे?" इतना कह, पहली गाथा कही—

> काळा मिगा सेतदन्ता तव इमे
> परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
> ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि
> अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[सुसीम! क्या तुम अपने और हमारे पुरखों को याद करके भी यह कहते हो कि सोने के जाल से ढके हुए सौ से अधिक काले हाथी, जिनके दाँत सफेद हैं, तुमको दूँगा, तुमको दूँगा?]

ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि, यह यह अथवा तुम्हारे पास के, काळा मिगा सेतदन्ता, ऐसे नाम वाले सौ से अधिक सब अलङ्कारों से सजे हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ हे सुसीम! क्या तू यह सचमुच कहता है। अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं, हमारे और अपने वंश के पिता-पितामह आदि को याद करते हुए। महाराज! सात पीढ़ियों से हमारे पिता पितामह हस्ती-मङ्गल करते रहे हैं। सो अब इस बात को याद करके भी क्या सचमुच हमारे और अपने वंश (के सम्बन्ध) को नष्ट करके ऐसा कहता है?

सुसीम ने बोधिसत्व की बात सुन दूसरी गाथा कही—

> काळा मिगा सेतदन्ता मम इमे
> परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना

सोने की ध्वजाओं के साथ सुनहरी जालों से ढक कर खड़ा किया गया। राज-अङ्गण अलङ्कृत हुआ। ब्राह्मण लोग प्रसन्नचित्त सजधज कर खड़े थे कि हम हस्ती-मङ्गल करेंगे, हम करेंगे। सुसीम राजा भी गहने और कपड़े पहिन जाकर मङ्गल-स्थान पर खड़ा हुआ।

बोधिसत्व ने भी एक कुमार के लिए जिस ढंग से अलङ्कृत होना उचित है, उस तरह अलंकृत हो, अपनी परिषद् का नेता बन राजा के पास जाकर पूछा—"महाराज! क्या आपने सचमुच ऐसी बात कही है कि हमारे वंश को नाश करके, दूसरे ब्राह्मणों से हस्ती-मङ्गल करवा, हाथियों के अलङ्कार तथा दूसरे सामान उनको देंगे?" इतना कह, पहली गाथा कही—

काळा मिगा सेतदन्ता तव इमे
परोसतं हेमजालाभिसञ्छन्ना
ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि
अनुस्सरं पेत्तिपितामहानं ॥

[सुसीम! क्या तुम अपने और हमारे पूर्वजों को याद करके भी यह कहते हो कि सोने के जाल से ढके हुए सौ से अधिक काले हाथी, जिनके दाँत सफेद हैं, तुमको देंगे, तुमको देंगे?]

ते ते ददामीति सुसीम! ब्रूसि, वह यह अथवा तुम्हारे पास के, काळा मिगा सेत दन्ता, ऐसे नाम वाले सौ से अधिक सब अलङ्कारों से सजे हाथी दूसरे ब्राह्मणों को देता हूँ, हे सुसीम! क्या तू यह सचमुच कहता है। अनुस्सरं पेत्ति पितामहानं, हमारे और अपने वंश के पिता-पितामह आदि को याद करते हुए। महाराज! सात पीढ़ियों से हमारे पिता-पितामह हस्ती-मङ्गल करते रहे हैं। सो आप इसे याद करके भी क्या सचमुच हमारे और अपने वंश (के सम्बन्ध) को नष्ट करके ऐसा कहते हैं?

सुसीम ने बोधिसत्व की बात सुन दूसरी गाथा कही—

काळा मिगा सेतदन्ता मम इमे
परोसतं हेमजालाभि सञ्छन्ना

था। उसने उन गृध्रों को कष्ट में देखकर एक ऐसी जगह पहुँचवा दिया जहाँ वर्षा नहीं हो रही थी। फिर वहाँ आग जलवाई। मुर्दों को फेंकने के स्थान से गो-मांस मँगवा कर उन्हें दिलवाया। उनकी रक्षा का प्रबन्ध किया।

आँधी-पानी के बन्द होने पर गृध्र स्वस्थ-शरीर हो पर्वत को ही लौट गए। उन्होंने वहाँ इकट्ठे हो, इस प्रकार मन्त्रणा की। 'बाराणसी सेठ ने हमारा उपकार किया। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए अब से तुम में से जिस किसी को जो वस्त्र या आभरण मिले, उसे चाहिए कि वह बाराणसी-सेठ के घर में खुले आँगन में गिरा दे।'

उस समय से गृध्र, आदमियों के धूप में सुखाने के लिए डाले हुए वस्त्रा-भरणों को, उन्हें लापरवाह देख, जिस तरह से चील मांस के टुकड़े को एक दम उठा ले जाती है, उसी तरह उठा ले जाकर बाराणसी-सेठ के खुले आँगन में गिरा देते। सेठ ने यह मालूम करके कि यह वस्त्राभूषण गृध्र ला लाकर डालते हैं, उन्हें पृथक एक ओर रक्खा।

राजा के पास खबर पहुँची कि गृध्र नगर उजाड़ रहे हैं। उसने कहा कि किसी एक गृध्र को पकड़ लो। सब माल मँगवा लूँगा। राजा ने जहाँ तहाँ जाल और पाश फैलवाए। माता पिता का पोषण करने वाला गृध्र जाल में फँस गया। उसे पकड़कर राजा को दिखाने के लिए ले चले।

बाराणसी-सेठ ने राजा की सेवा में जाते समय उन मनुष्यों को गृध्र पकड़ कर ले जाते हुए देखा। उसने सोचा कि यह इस गृध्र को कष्ट न दें, इसलिए साथ हो लिया। गृध्र को राजा के पास ले गए। राजा ने पूछा—

"तुम नगर पर डाका डालकर वस्त्र आदि ले जाते हो?"

"महाराज! हाँ।"

"यह किसे दिए हैं?"

"बाराणसी-सेठ को।"

"क्यों?"

"हमें उसने जीवन-दान दिया था। उपकार करने वाले का प्रत्युपकार करना चाहिए। इसलिए दिए।"

राजा ने उसे यह कहते हुए कि गृध्र तो सौ योजन की दूरी से लाश को

देख लेते हैं, तूने अपने लिए फैलाए फंदे को क्यों नहीं देखा, (कह) पहली गाथा कही—

यं नतु गिज्झो योजनसतं कुणपानि अवेक्खति,
कस्मा जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झसि ॥

[गृध्र तो सौ योजन दूरी पर से भी लाश को देख लेता है। तू पास से भी जाल और फंदे को क्यों नहीं देख सका ?]

यं निपात मात्र है। नु, निपात ही है। गिज्झो योजनसतं (गीध सौ योजन) दूर पर पड़ी हुई कुणपानि अवेक्खति देखता है। आसज्जापि, पास आकर भी, पहुँच कर भी, तू अपने लिए फैलाए जाल और फंदे के पास पहुँच कर भी उसे क्यों न बुज्झसि (यह) पूछा।

गृध्र ने उसकी बात सुन दूसरी गाथा कही—

यदा पराभवो होति पोसो जीवितसङ्खये,
अथ जालं च पासं च आसज्जापि न बुज्झति ॥

[जब विनाश का समय आता है, जब जीवन पर सङ्कट आता है, तब प्राणी पास में पड़े हुए जाल और फंदे को भी नहीं देखता।]

पराभवो, विनाश। पोसो, प्राणी।

गृध्र की बात सुनकर राजा ने सेठ से पूछा—

"महासेठ ! क्या यह बात सच है ? क्या गृध्र तुम्हारे घर वस्त्र आदि लाया है ?"

"देव ! सच है।"

"वह कहाँ है ?"

"देव ! मैंने सब पृथक रक्खे हैं। जो जिसका है, वह उसे दूँगा। इस गृध्र को छोड़ दें।"

गृध्र को छुड़वाकर महासेठ ने जो जिसका था, वह सब को दिलवाया।

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु ! नहि भुत्वान भिक्खसि ।
भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु मा तं कालो उपच्चगा ॥[1]

[भिक्षु ! तू बिना काम-भोगों को भोगे भिक्षु बना है। काम-भोगों को भोग कर भिखारी नहीं बना है। भिक्षु ! काम-भोगों का भोग करके तू भिखारी बन। यह तेरा काम-भोगों को भोगने का समय न बीत जाए।]

अभुत्वा भिक्खसि भिक्खु, भिक्षु ! तू तरुणाई में काम-भोगों को न भोग कर भिक्षाचार करता है। नहि भुत्वान भिक्खसि, क्या पाँच प्रकार के काम-भोगों को भोग कर ही भिखारी नहीं बनना चाहिए ? तू काम-भोगों को न भोग कर ही भिखारी बना है। भुत्वान भिक्खु ! भिक्खसु, भिक्षु ! अभी तरुणाई में काम-भोगों को भोग। काम-भोगों को भोग कर पीछे वृद्ध होने पर भिखारी बनना। मा तं कालो उपच्चगा, यह काम-भोगों के उपभोग करने की आयु, यह तरुणाई यूँ ही न बिता।

बोधिसत्व ने देव-कन्या की बात सुन अपना विचार प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

कालं वोहं न जानामि, छन्नो कालो न दिस्सति
तस्मा अभुत्वा भिक्खामि, मा मं कालो उपच्चगा ॥

[मैं मृत्यु के समय को नहीं जानता। छिपा हुआ समय दिखाई नहीं देता। इसलिए बिना काम-भोगों का उपभोग किए ही भिक्षु बना हूँ। मेरा यह समय न बीत जाए।]

कालं वोहं न जानामि, 'वो' केवल निपात है। मैं प्रथम आयु में मरूँगा, मध्यम-आयु में अथवा आखिरी में—अपना मरने का समय नहीं जानता हूँ।

अत्यन्त पण्डित आदमी को भी—

---

[1] देवता संयुक्त, संयुक्त निकाय।

क. वर्तमान कथा

एक दिन शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर उपदेश दिया "भिक्षुओ! जो तुम्हारे योग्य हो उसमें विचरो। जो तुम्हारा पैतृक विषय हो उसमें।" यह संयुक्त निकाय के महावर्ग का सूत्र है।[1] इसका उपदेश करते हुए कहा—"तुम अपनी बात रहने दो। पूर्व समय में जानवर भी अपने पैतृक विषय को छोड़ अयोग्य-स्थान में विचरने से शत्रुओं के हाथ में पड़, अपनी बुद्धि तथा उपाय-कौशल से शत्रुओं के हाथ से मुक्त हुए।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्त्व बटेर होकर पैदा हुआ। वह हल चलाने की जगह पर ढेलों में रहता था।

एक दिन अपनी गोचर-भूमि को छोड दूसरे की गोचर-भूमि में जाने की इच्छा से वह जंगल तक चला गया। उसे वहाँ घूमता देख एक बाज ने यकायक आकर पकड लिया। जब उसे बाज पकड़ कर ले जा रहा था, तो वह इस प्रकार रोने लगा—"हम अत्यन्त अभाग्यवान् हैं। हमारा पुण्य बहुत कम है। हम दूसरों के स्थान में चरने गए। यदि आज हम अपने पैतृक स्थान में ही चरते तो यह बाज मेरे साथ युद्ध करने में समर्थ न होता"।

"लापक! तेरा स्वकीय पैतृक स्थान कौन सा है?"

"यही जहाँ हल चलाने की जगह पर ढेले हैं।"

बाज ने अपने बल को ढीला कर उसे छोड़ दिया और कहा—'हे बटेर तू जा। मैं तुझे वहाँ भी जाकर पकड़ लूँगा।'

बटेर ने वहाँ जा एक बड़े से ढेले पर चढ बाज को ललकारा—'बाज! अब तू आ।'

बाज ने अपना बल सँभाल, दो पंखों को उठा बटेर को एकदम घेर लिया।

---

[1] सतिपट्ठान संयुत्त, अम्बपालि वर्ग।

उसके मरने पर बटेर ने निकल कर शत्रु की पीठ देख कर सन्तुष्ट हो उसकी छाती पर खड़े हो उल्लास पूर्वक दूसरी गाथा कही—

सोहं नयेन सम्पन्नो पेत्तिके गोचरे रतो
अपेतसत्तु मोदामि सम्पस्सं अत्थमत्तनो ॥

[मैं उपाय से अपने पैतृक-प्रदेश में चरता हुआ, अपनी उन्नति देखता हुआ प्रसन्न हूँ; क्योंकि मेरा शत्रु नहीं रहा है।]

नयेन, उपाय से, अत्थमत्तनो, अपनी आरोग्य नामक उन्नति।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर बहुत से भिक्षुओं ने स्रोतापत्ति आदि फल प्राप्त किए।

उस समय बाज देवदत्त था। बटेर तो मैं ही था।

१६६. अरक जातक

"यो वे मेत्तेन चित्तेन ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय मेत्तसुत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक समय शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा—"भिक्षुओ, मैत्री-भावना से चित्त की विमुक्ति (का आसेवन) है का सेवन करने से, की

अंगुत्तर निकाय, [illegible] निपात।

मुदिता-भावना तथा उपेक्षा-भावना का अभ्यास करना चाहिए। मैत्री-पूर्ण चित्त अर्पणा-समाधि तथा ब्रह्मलोक-परायणता तक को प्राप्त कराता है।" इस प्रकार मैत्री-भावना की प्रशंसा करते हुए उन्होंने यह गाथा कही—

> यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्ब लोकानुकम्पति
> उद्धं अधो च तिरियं च अप्पमाणेन सब्बसो
> अप्पमाणं हितं चित्तं परिपुण्णं सुभावितं
> यं पमाणं कतं कम्मं न तं तत्रावसिस्सति

[जो अप्रमाण मैत्री चित्त से ऊपर-नीचे तथा तिर्यक् दिशा में सारे लोकों पर अनुकम्पा करता है, उसके प्रमाण रहित, परिपूर्ण अच्छी तरह से भावना किए गए मैत्री-चित्त के (फल) के आगे जो सीमित कर्म है उसका फल नहीं ठहरता।]

यो वे मेत्तेन चित्तेन सब्ब लोकानुकम्पति, क्षत्रिय आदि में अथवा श्रमण-ब्राह्मण आदि में जो कोई अर्पणा-प्राप्त चित्त से सारे प्राणियों पर अनुकम्पा करता है उद्धं पृथिवी से नैवसंज्ञानासंज्ञायतन ब्रह्मलोक तक अधो पृथ्वी से नीचे उस्सद नाम के महानरक तक, तिरियं, मनुष्य लोक में जितने चक्रवाल हैं उन सब में जितने प्राणी हैं वह सभी वैर-रहित हों, क्रोध-रहित हों, दुःख-रहित हों, इस प्रकार भावना किए गए मैत्री-चित्त से। अप्पमाणेन अप्रमाण प्राणियों के कारण असीम आलम्बन होने से अप्रमाण। सब्बसो सब तरह से ऊपर, नीचे तथा तिर्यक इस प्रकार सब सुगति तथा दुर्गति में। अप्पमाणं हितं चित्तं सभी प्राणियों के प्रति मैत्री की असीम भावना। परिपुण्णं सम्पूर्ण सुभावितं अच्छी प्रकार बढ़ाया, इसका मतलब है अर्पणा चित्त। यं पमाणं कतं कम्मं जो यह परित्त-परित्तारम्मण, परित्त-अप्पमाणारम्मण तथा अप्पमाण-परित्तारम्मण तीन प्रकार के आलम्बन पर पूर्ण अधिकार करते हुए उपर कहा गया या परित्त कामावचर कर्म किया जाता है। न तं तत्रावसिस्सति वह परित्त [illegible]। इस अप्रमाण मैत्री चित्त द्वारा कामावचर कर्म है, उसका [illegible] नहीं ठहरता। जैसे बाढ़ के पानी पर सीमित पानी उसमें पृथक नहीं रह सकता है, नहीं ठहरता है, वह बाढ़ से ही मिल जाता है। इसी प्रकार

क. वर्तमान कथा

उस समय अनेक बहुश्रुत भिक्षुसंघ के बीच में ऐसे पाठ करते थे जैसे मनोशिला के नीचे तरुण सिंह गर्ज रहा हो, अथवा आकाश से गङ्गा उतारी जा रही हो।

कोकालिक भिक्षु अपने तुच्छ-ज्ञान का विचार न कर जिस समय भिक्षु पाठ करते थे, स्वयं भी पाठ करने की इच्छा से भिक्षुओं के बीच में आकर सब का नाम न ले कहता कि भिक्षु मुझे पाठ करने नहीं देते, यदि पाठ करने दें तो मैं भी पाठ करूँ। इस प्रकार वह जहाँ तहाँ कहता हुआ घूमता था।

उसकी वह बात भिक्षुसंघ में प्रकट हो गई। भिक्षुओं ने सोचा इसकी परीक्षा करें। इस विचार से उन्होंने कहा—"आयुष्मान्! कोकालिक! आज संघ के सम्मुख पाठ कर।" उसने अपना बल न पहचान कर स्वीकार कर लिया कि मैं आज संघ के सम्मुख पाठ करूँगा।

तब उसने अपने को अनुकूल पड़ने वाला यवागु पिया। भोजन किया। अनुकूल दाल ही ली।

सूर्यास्त होने पर धर्म सुनने के समय सूचना देने पर भिक्षुसंघ एकत्र हुआ। वह कुरण्ड-पुष्प सदृश काषाय-वस्त्र पहन और कनेर पुष्प सदृश लाल चीवर ओढ संघ के बीच जा, स्थविरों को प्रणाम कर, अलङ्कृत रत्न-मण्डप के बीच बिछे हुए श्रेष्ठ आसन पर चढ चित्रित पंखा हाथ में ले पाठ करने के लिए बैठा। उसी समय उसके शरीर से पसीना बहने लगा। वह लज्जित हो गया। वह पूर्व-गाथा[1] का प्रथम पाद भर कह सका। उसके आगे उसे नहीं सूझा। वह काँपता हुआ आसन से उतर आया। लज्जित हो संघ के बीच से गुजर वह अपने परिवेण में चला गया।

किसी दूसरे ही बहुश्रुत भिक्षु ने पाठ किया। उस समय से भिक्षु जान गए कि वह अज्ञानी है।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलाई—"आयुष्मानो! पहले

---

[1] धर्मोपदेश देने के लिए जिस गाथा का आधार लिया जाता है।

कोकालिक के ज्ञान की तुच्छता अज्ञात थी। अब इसने अपने ही बोलकर उसे प्रकट कर दिया।"

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?" 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, न केवल अभी कोकालिक ने बोलकर अपने आपको प्रकट किया है, पहले भी बोलकर प्रकट किया है।"

यह कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय-प्रदेश में सिंह के रूप में पैदा हुए। वह बहुत से सिंहों के राजा बने।

अनेक सिंहों के साथ वह रजत-गुफा में रहते थे। उसके पास ही एक गुफा में एक सियार रहता था। एक दिन वर्षा के हो चुकने पर सब सिंह सिंहराज के गुफा-द्वार पर इकट्ठे हो सिंह-नाद करते हुए सिंह-क्रीड़ा करने लगे।

उनके इस प्रकार दहाड़ते हुए क्रीड़ा करने के समय वह सियार भी चिल्लाया। सिंहों ने जब उसकी आवाज सुनी तो यह यह सोचकर लज्जा के मारे चुप हो गए कि यह सियार भी हमारे साथ आवाज लगा रहा है। उनके चुप हो जाने पर बोधिसत्व के पुत्र सिंह-बच्चे ने पूछा—"तात! यह सिंह दहाड़ दहाड़ कर सिंह-क्रीड़ा करते हुए किसी एक की आवाज सुनकर लज्जा से चुप हो गए। यह कौन है जो अपने शब्द से अपने को प्रकट कर रहा है?" इस प्रकार पिता से पूछते हुए सिंह-बच्चे ने पहली गाथा कही—

को नु सद्देन महता अभिनादेति दद्दरं
किं सीहा न पटिनदन्ति को नामेसो मिगाधिभु॥

[हे मृगराज! यह कौन है जो बड़े शब्द से दद्दर पर्वत को गुंजा रहा है? यह कौन है जिसके कारण सिंह नहीं बोलते हैं?]

अभिनादेति दद्दरं, दद्दर पर्वत को गुंजा रहा है। मिगाधिभु पिता को सम्बोधन करना है। यही यह अर्थ है। मिगाधिभु! मृग-श्रेष्ठ! सिंह-राज! मैं तुझे पूछता हूँ कि यह कौन है?

उसकी बात सुन पिता ने दूसरी गाथा कही—

> अधमो मिगजातानं सिगालो तात वस्सति
> जातिमस्स जिगुच्छन्ता तुण्ही सीहा समच्छरे ॥

[तात ! पशुओं में जो सबसे नीच सियार है वही चिल्लाता है। वि उसकी जाति से घृणा करने के कारण चुप हो गए हैं।]

समच्छरे, सं केवल उपसर्ग है। अच्छा समझते हैं अर्थ है। तुण्ही, बैठ हैं, चुप होकर बैठते हैं, यही अर्थ है। पुस्तकों में समच्छरे लिखते हैं।

शास्ता बोले—"भिक्षुओ ! कोकालिक ने केवल अभी अपनी वाणी अपने को प्रकट नहीं किया, पहले भी किया ही है।"

यह धर्म-देशना ला शास्ता ने जातक का मेल बैठाया।

उस समय सियार कोकालिक था। सिंह-बच्चा राहुल। सिंह-रा मैं ही था।

१७३. मक्कट जातक

"तात ! माणवको एसो···" यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय एक ढोंगी के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा प्रकीर्णक परिच्छेद की उद्दालक जातक[1] में आएगी। उस

---

[1] उद्दालक जातक (४८७)

[तात ! यह एक माणवक ताड़-वृक्ष को आश्रय करके बैठा है। यह घर है। हन्त ! हम इसे गृह दें।]

माणवको एसो, प्राणी वाची शब्द है। तात ! यह एक माणवक प्राणी है। 'एक तपस्वी है' यही प्रकट करता है। तालमूलं अपस्सितो, ताड़ के वृक्ष के आश्रय है। अगारकञ्चिदं अत्थि, यह हमारा प्रव्रजितों का घर है। पर्ण-कुटी को लेकर कहा है। हन्द, निश्चय के अर्थ में निपात है। देमस्सगारकं, इसे एक कोने में रहने के लिए घर दें।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर पर्ण-कुटी के दरवाज़े पर खड़े हो देखकर पहचान लिया कि यह बन्दर है। उन्होंने कहा—'तात ! मनुष्यों का मुँह ऐसा नहीं होता। यह बन्दर है। इसे यहाँ नहीं बुलाना चाहिए।' यह कहते हुए दूसरी गाथा कही—

> मा खो तं तात ! पक्कोसि दूसेय्य नो अगारकं
>
> नेतादिसं मुखं होति ब्राह्मणस्स सुसीलिनो ॥

[तात ! इसे मत बुला। यह हमारे घर को खराब कर देगा। सदाचारी ब्राह्मण का ऐसा मुँह नहीं होता।]

दूसेय्य नो अगारकं, यह यहाँ प्रवेश पाकर इस कठिनाई से बनाई हुई पर्ण-कुटी को या तो आग से जलाकर अथवा मल त्याग कर खराब कर दे सकता है। नेतादिसं शीलवान् ब्राह्मण का ऐसा मुँह नहीं होता।

यह बन्दर है कह बोधिसत्त्व ने एक जलती हुई लकड़ी फेंकी कि यहाँ क्या बैठा है ? इस प्रकार उसे भगा दिया। बन्दर वल्कल वस्त्र छोड़ वृक्ष पर चढ़ वन में भाग गया। बोधिसत्त्व चारों ब्रह्म-विहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बन्दर यह ढोंगी [illegible] था। [illegible] राहुल था। तपस्वी तो मैं ही था।

— —

बन्दर ने पानी पी, पास बैठ नकल बनाते हुए, बोधिसत्व को डराया। बोधिसत्व ने उसकी यह करतूत देख 'अरे दुष्ट बन्दर ! मैंने तुझे प्यास से कष्ट पाते हुए को पानी दिया। तू मुझे चिढ़ाता है ? अहो ! पापी पर किया गया उपकार निरर्थक होता है" कहते हुए पहली गाथा कही—

अदम्ह ते वारि पहूतरूपं
घम्माभितत्तस्स पिपासितस्स
सो दानि पीत्वान किंकि करोसि,
असङ्गमो पापजनेन सेय्यो ॥

[धूप से तप्त तुझ प्यासे को हमने बहुत सा पानी दिया। अब तू पानी पी कर चिढ़ाने के लिए 'कि कि' आवाज करता है। पापी से दूर रहना ही अच्छा है।]

सो दानि पीत्वान किंकि करोसि, सो अब तू मेरा दिया हुआ पानी पीकर (मुझे) चिढ़ाता हुआ 'किकि' आवाज करता है। असङ्गमो पापजनेन सेय्यो, पापी जन के साथ मिलना अच्छा नहीं। दूर रहना ही अच्छा है।

उसे सुन वह मित्र-द्रोही बन्दर बोला—क्या तू समझता है कि यह इतने से ही समाप्त हो गया ? अब तेरे सिर पर पाखाना करके जाऊँगा। यह कहते हुए उसने दूसरी गाथा कही।

को ते सुतो वा दिट्ठो वा सीलवा नाम मक्कटो
इदानि खो तं ऊहच्च एसा अस्माक धम्मता ॥

[तुम कौन सा बन्दर सदाचारी है सुना या देखा ? अभी मैं तुझे मैला करके (जाऊँगा) यही हमारा स्वभाव है।]

संक्षिप्तार्थ यह है—हे ब्राह्मण मक्कटो कुनाम, सदाचारी सीलवा नाम है यह तूने कहीं सुतो वा दिट्ठो वा ? इदानि खो मैं तं ऊहच्च तेरे सिर पर

जिस समय ऋषि-गण भिक्षा के लिए जाते, एक लोभी बन्दर आश्रम पर आकर पर्ण-कुटी का फूस उजाड़ देता, पानी के घड़ों में से पानी गिरा देता। कुण्डियाँ तोड़ देता और अग्नि-शाला में पाखाना कर देता।

तपस्वियों ने वर्षा भर रह कर सोचा कि अब हेमन्त ऋतु आ गई है। फल फूल बहुत हो गए हैं। (प्रदेश) रमणीय है। वहीं चलकर रहें। उन्होंने प्रत्यन्त-गाँव के वासियों से विदा माँगी।

मनुष्य बोले—भन्ते ! हम कल आश्रम पर भिक्षा लेकर आयेंगे। उसे ग्रहण कर जाएँ।

दूसरे दिन वे बहुत सारा खाद्य-भोज्य लेकर वहाँ पहुँचे।

उसे देख बन्दर ने सोचा मैं भी ढोंग करके मनुष्यों को प्रसन्न कर अपने लिए खाद्य-भोज्य मँगवाऊँ।

वह तप करते तपस्वी की तरह हो, सदाचारी की तरह हो, तपस्वियों से दूर ही दूर पर सूर्य्य को नमस्कार करता हुआ खड़ा हुआ। मनुष्यों ने उसे देख सोचा कि सदाचारियों के पास रहने वाले सदाचारी होते हैं और पहली गाथा कही—

> सब्बेसु किर भूतेसु सन्ति सीलसमाहिता,
> पस्स साखामिगं जम्मं आदिच्चमुपतिट्ठति ॥

[सभी प्राणियों में सदाचारी होते हैं। सूर्य्य की पूजा करते हुए नीच बन्दर को देखो।]

सन्ति सीलसमाहिता, शील से युक्त हैं, शीलवान तथा समाहित या एकाग्रचित्त हैं, यह भी अर्थ है। जम्मं नीच, आदिच्चमुपतिट्ठति, सूर्य को नमस्कार करते हुए ठहरा है।

इस प्रकार उन मनुष्यों को उसकी प्रशंसा करते देख बोधिसत्व ने कहा कि तुम इस लोभी बन्दर के आचरण को न जानकर अयोग्य-जगह में ही श्रद्धावन्त हुए हो, और यह दूसरी गाथा कही—

> नास्स सीलं विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ
> अग्गिहुत्तञ्च ऊहन्नं द्वे च भिन्ना कमण्डलू ॥

दरारें पानी से भरी हैं। मार्ग दुर्गम है। मैं शास्ता के पास जाता हूँ। वे मुझे पूछेंगे, 'महाराज ! कहाँ जाते हो ?' मैं उन्हें यह बात कहूँगा। शास्ता मुझे केवल पारलौकिक उपदेश ही नहीं देते हैं। वह मुझे इस लोक में भी लाभ की बात बताते हैं। इसलिए यदि जाने से मेरी हानि होनी होगी तो वह कह देंगे, 'महाराज ! यह असमय है।' यदि लाभ होगा, तो वह चुप रहेंगे।

वह जेतवन जा शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा।

शास्ता ने पूछा—महाराज ! दिन चढ़े तुम कैसे आए ?

भन्ते ! मैं इलाके को शान्त करने के लिए निकला हूँ। तुम्हें प्रणाम करके जाने की इच्छा से आया हूँ।

शास्ता ने कहा—'महाराज ! पूर्व समय में भी सेना के तैयार होने पर, पण्डितों का कहना मान राजा लोग असमय में सेना को चढ़ा कर नहीं ले गए।' फिर उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसके अर्थ-धर्मानुशासक सर्वार्थ-अमात्य थे। राजा के इलाके के बगावत करने पर प्रत्यन्त के योद्धाओं ने सन्देशा भेजा।

राजा वर्षा-ऋतु में निकला। उसका पड़ाव उद्यान में लगा। बोधिसत्व राजा के पास खड़े थे। उस समय घोड़ों के लिए मटर भिगो, सो कर द्रोणियों में डाल रखे थे। उद्यान के बन्दरों में से एक बन्दर वृक्ष से उतरा। उसने वहाँ से मटर लिए, मुँह भरा, हाथ भी भरे और कूद कर वृक्ष पर बैठ खाना शुरू किया।

उस समय उसके हाथ से एक मटर भूमि पर गिर पड़ा। वह हाथ में और मुँह में जितने मटर थे उन्हें छोड़ वृक्ष से उतर उस मटर को ढूँढने लगा। जब उसे वह मटर नहीं दिखाई दिया तो वह फिर वृक्ष पर चढ़ा और बड़े मुकदमे में हजार हार गये की तरह चिन्ता करता हुआ रोनी सूरत बना वृक्ष की शाखा पर बैठा।

राजा ने बन्दर की करतूत देख बोधिसत्व को सम्बोधित कर पूछा—'मित्र ! बन्दर ने यह क्या किया ?' बोधिसत्व ने कहा—'महाराज !

के कारण सब मटर गँवाए, उसी प्रकार हम भी असमय में जब कन्दराएँ और दरारें पानी से भरी हैं, चलने पर थोड़े से लाभ के लिए बहुत से हाथी घोड़ों तथा सेना को गँवाएँगे। इसलिए असमय में जाना उचित नहीं। यूं राजा को उपदेश दिया।

राजा उसकी बात सुन वहीं से लौट कर वाराणसी नगर में वापिस चला गया। चोरों ने सुना कि राजा चोरों को दबाने के लिए नगर से निकल पड़ा है, वे इलाके से भाग गए। वर्तमान समय में भी चोरों ने जब यह सुना कि कोशल राजा निकल पड़ा है, वह भाग गए।

राजा ने शास्ता का धर्मोपदेश सुना। फिर आसन से उठ, प्रणाम और प्रदक्षिणा कर श्रावस्ती को चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय राजा आनन्द था। पण्डित अमात्य तो मैं ही था।

१७७. तिन्दुक जातक

"[illegible]..." यह गाथा शास्ता ने जेतवन में रहते समय [illegible] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

[illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible] ([illegible])

राजा ने बोधिसत्व को बुलाकर पूछा—"तात ! इसे गिरा सकते हो ?"

"महाराज ! हाँ ! थोड़ी जगह मिलने पर गिरा सकूँगा।"

"जगह कहाँ चाहिए ?"

"जहाँ आपकी शय्या है।"

राजा ने शय्या हटवा कर जगह करा दी। बोधिसत्व हाथ में धनुष नहीं रखते थे। वह कपड़ों के नीचे छिपाए रहते थे। इसलिए कहा कि क़नात चाहिए। राजा ने बहुत 'अच्छा' और क़नात मँगवा कर तनवा दी। बोधिसत्व क़नात के अन्दर चले गए। वहाँ पहुँच उन्होंने ऊपर पहना श्वेत वस्त्र उतार एक लाल कपड़ा पहना। फिर कच्छ पहन, थैली से जुड़ने-वाली तलवार निकाल, बाईं ओर बाँधी। तब सुनहरी वस्त्र पहन, कमर पर तरकस बाँध, जुड़ने वाला, मेढ़े की सींग का बना बड़ा धनुष ले, मूँगे के रंग की डोरी बाँध, सिर पर पगड़ी धारण की। तेज़ तीर को नाखून पर घुमाते हुए वह क़नात के दो हिस्से कर ऐसे निकला मानो पृथ्वी फाड़ कर अलंकृत नाग-कुमार बाहर आया हो। फिर बोधिसत्व तीर चलाने की जगह पर जा, तीर को तैयार कर राजा से बोले—

"महाराज ! इस आम को ऊपर जाने वाले तीर से गिराऊँ, अथवा नीचे जाने वाले तीर से ?"

"तात ! मैंने ऊपर जाने वाले तीर से बहुत गिराते देखा है, लेकिन नीचे जाने वाले तीर से गिराते नहीं देखा है। नीचे जाने वाले तीर से गिराएँ।"

"महाराज ! यह तीर दूर तक जाएगा। चातुर्महाराजिक भवन तक जाकर स्वयं नीचे उतरेगा। जब तक यह नीचे उतरे, तब तक आपको प्रतीक्षा करनी होगी।"

राजा ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया।

बोधिसत्व ने फिर कहा—"महाराज ! यह तीर ऊपर जाता हुआ आम की डठल को ठीक बीच में से छेदता हुआ ऊपर जाएगा, और नीचे उतरता हुआ केशाग्रमात्र भी इधर उधर न हो, निश्चित जगह पर लग, आम को लेकर नीचे उतरेगा। महाराज ! देखें।"

तब बोधिसत्व ने ज़ोर लगाकर तीर छोड़ा। आम की डठल को बीच में से छेदता हुआ तीर ऊपर चढ़ा। बोधिसत्व ने यह समझ कि अब वह तीर

जहाँ सातों राजा भोजन कर रहे थे वहाँ सोने की थाली के ठीक बीच में जाकर गिरा। उन अक्षरों को देख मरने के भय से वह सभी भाग गए।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने, छोटी मक्खी जितना खून पीती है उतना खून भी बिना बहाए सातों राजाओं को भगा दिया। फिर छोटे भाई से भेंट कर, काम-भोग के जीवन को त्याग ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की। अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर जीवन समाप्त होने पर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने बुद्ध हुए रहने पर "भिक्षुओ! असदिसकुमार ने सात राजाओं को भगा, संग्राम विजयी हो ऋषियों के क्रम से प्रव्रज्या ग्रहण की" कह, यह गाथाएँ कहीं—

धनुग्गहो असदिसो राजपुत्तो महब्बलो
दूरेपाती अक्खणवेधी महाकायप्पदालनो ॥
सब्बामित्ते रणं कत्वा न च किञ्चि विहेठयि
भातरं सोत्थि कत्वान सञ्ञमं अज्झुपागमि ॥

[महाबलशाली, बड़ी बड़ी चीज़ों को बींधने वाले, अचूक निशाना लगाने वाले, धनुर्धारी असदिस राजपुत्र ने जो तीर को दूर गिराता था, बिना किसी को कष्ट दिए सभी शत्रुओं से युद्ध कर भाई का उपकार किया। वह स्वयं संन्यासी हो गया।]

असदिसो केवल नाम से ही नहीं, बल, वीर्य तथा प्रज्ञा में भी असदृश। महब्बलो शरीर-बल तथा ज्ञान-बल, दोनों बलों से बलशाली। दूरेपाती चातुर्महाराजिक भवन तथा तावतिंस भवन तक तीर पहुँचाने की सामर्थ्य रखने से, दूर गिराने वाला। अक्खणवेधि अचूक निशाने वाला, अथवा अक्खण कहते हैं बिजली को, जितनी देर एक बार बिजली चमकती है, एक बार बिजली चमकने के, उतनी ही देर के प्रकाश में सात आठ बार तीर मार बींधने वाला। महाकायप्पदालनो बड़ी चीज़ों का बींधने वाला। चर्म-काय, लकड़ी-काय, लोह-काय,[1] अयस्-काय, बालू-काय, उदक-काय तथा फलक-काय, यह सब

---

[1] लोह =ताँबा।

कुमार को प्रव्रजित किया। कपिलपुर से निकल क्रमशः श्रावस्ती जाते समय आयुष्मान् नन्द भगवान् का पात्र ले शास्ता के साथ साथ चले। जनपद-कल्याणि[1] ने सुना तो आधे बिखरे केशों से झरोखे में से देख कर कहा कि आर्य-पुत्र शीघ्र लौटना। नन्द जनपदकल्याणि के इस कथन को याद करता हुआ उत्कण्ठा के कारण शासन में मन न लगा सका। वह पाण्डुवर्ण का हो गया; और उसके शरीर में नसें ही नसें दिखाई देने लगीं।

शास्ता ने उसका हाल जान सोचा कि मैं नन्द को अर्हत-पद पर प्रतिष्ठित करूँ। इसलिए उन्होंने उसके रहने के परिवेण में जा वहाँ बिछे आसन पर बैठ पूछा—"नन्द! इस शासन में तेरा मन लगता है या नहीं?

"भन्ते! जनपदकल्याणि में आसक्ति होने के कारण मन नहीं लगता।"

"नन्द! तू पहले हिमालय में चारिका करने गया है?"

"भन्ते! नहीं गया हूँ।"

"तो! आओ चलें।"

"भन्ते! मुझे ऋद्धि(-बल) नहीं है। मैं कैसे जाऊँगा?"

"नन्द! मैं तुझे अपने ऋद्धि(-बल) से ले जाऊँगा।"

शास्ता ने स्थविर को हाथ से पकड़ आकाश मार्ग से जाते हुए रास्ते में जला हुआ खेत दिखाया। वहाँ जले हुए एक ठूँठ पर एक बन्दरी बैठी दिखाई; जिसके कान, नाक और पूँछ कटी थी, जिसके बाल जल गए थे; जिसकी खाल फट गई थी, जिसकी चमड़ी मात्र बाकी रह गई थी तथा जिसमें से रक्त बह रहा था।

"नन्द! इस बन्दरी को देखते हो?"

"भन्ते! हाँ।"

"अच्छी तरह से प्रत्यक्ष करो।"

फिर उसे ले साठ योजन का मनोशिला-तल, अनतप्त आदि सात महा-सर, पाँच महानदियाँ स्वर्ण-पर्वत, रजत-पर्वत तथा मणि-पर्वत से युक्त सैकड़ों रमणीय-स्थान और हिमालय-पर्वत दिखा पूछा—

---

[1] नन्द की भार्या।

"नन्द ! तूने तावतिंस-भवन देखा है ?"

"भन्ते ! नहीं देखा ।"

"नन्द ! आ तुझे तावतिंस भवन दिखाऊँ ।"

शास्ता उसे बाँह से पकड़ कर तावतिंस-भवन जाकर खड़े हुए । दोनों देव-लोकों के देवगणों सहित देवेन्द्र शक्र ने शास्ता के पास आकर प्रणाम किया और एक ओर बैठ गया । उसकी ढाई करोड़ सेविकाएँ और कबूतरी की तरह लाल पैरवाली पाँच सौ अप्सराएँ भी आकर, प्रणाम कर एक ओर बैठीं । शास्ता ने नन्द को ऐसा किया कि वह उन पाँच सौ अप्सराओं पर आसक्त हो उन्हें बार बार देखने लगा ।

"नन्द ! कबूतरी जैसे पैर वाली इन अप्सराओं को देखता है ?"

"भन्ते ! हाँ ।"

"क्या वह सुन्दरी जनपदकल्याणि अधिक सुन्दरी है अथवा ये ?"

"भन्ते ! जनपदकल्याणि की तुलना में जैसे वह बूढ़ी बन्दरी थी, उसी तरह इनकी तुलना में जनपदकल्याणि है ।"

"नन्द ! अब क्या करेगा ?"

"भन्ते ! क्या करने से यह अप्सराएँ मिल सकेंगी ?"

"श्रमण-धर्म पूरा करने से ।"

"यदि भन्ते ! आप मुझे इन्हें दिलाने के जिम्मेवार हों तो मैं श्रमण-धर्म पूरा करूँगा ।"

"नन्द ! कर । मैं जिम्मेवार होता हूँ ।"

इस प्रकार देवगणों के बीच में स्थविर ने तथागत को जिम्मेवार ठहरा कर कहा—"भन्ते ! देर न करें । आएँ चलें । मैं श्रमण-धर्म करूँगा ।"

शास्ता उसे ले जेतवन चले आए । स्थविर ने श्रमण-धर्म करना आरम्भ किया ।

शास्ता ने धर्मसेनापति सारिपुत्र को सम्बोधन कर कहा— "सारिपुत्र ! मेरे छोटे भाई नन्द ने त्रयस्त्रिंशत्[1] देवलोक में देवगणों के बीच अप्सराओं

---

[1] त्रयस्त्रिंशत् देवताओं का भवन ।

दिलाने के लिए मुझे जिम्मेवार ठहराया है। इस उपाय से महामौद्गल्यायन स्थविर, महाकाश्यप स्थविर, अनुरुद्ध स्थविर, धर्मभण्डारी आनन्द स्थविर, अस्सी महाश्रावकों तथा प्रायः करके शेष सभी भिक्षुओं को कहा। धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर ने नन्द स्थविर के पास जाकर कहा—आयुष्मान् ! क्या तूने सचमुच अर्थास्थिरान् लोक में देवसमूह के बीच अप्सराएँ मिलें तो श्रमण-धर्म करूँगा, इसके लिए दसबलधारी (बुद्ध) को जामिन ठहराया है? यदि ऐसा है तो तेरा ब्रह्मचर्य-जीवन स्त्रियों के लिए है, आसक्ति के लिए है। यदि तू स्त्रियों के लिए श्रमण-धर्म कर रहा है तो तुझ में और उस मजदूर में क्या अन्तर है जो मजदूरी के लिए काम करता है ?" इस प्रकार नन्द स्थविर को लज्जित किया, निस्तेज किया। इसी तरह सभी अस्सी महाश्रावकों ने तथा शेष भिक्षुओं ने उस आयुष्मान् को लज्जित किया।

उसे लज्जा आई और निन्दा-भय के कारण उसने दृढ़ पराक्रम कर विदर्शना-भावना बढ़ा अर्हत्व प्राप्त किया। फिर शास्ता के पास जाकर कहा—"भन्ते ! मैं आपको आपकी जिम्मेवारी से मुक्त करता हूँ।" शास्ता ने कहा—"नन्द ! जिस समय तूने अर्हत्व प्राप्त किया उसी क्षण मैं अपनी जिम्मेवारी से मुक्त हो गया।

यह समाचार सुन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बात चलाई—'यह आयुष्मान् नन्द स्थविर उपदेश के जितने अधिकारी हैं। एक बार उपदेश देने से ही लज्जा तथा निन्दा-भय का ख्याल कर श्रमण धर्म करके अर्हत्व प्राप्त कर लिया।' शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, न केवल अभी, पूर्व में भी नन्द उपदेश का अधिकारी हो रहा है। फिर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हस्ति-शिक्षक के कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर हस्ति-शिक्षा के कार्य में

निष्णात हो बाराणसी राजा के एक शत्रु-राजा की सेवा में रहने लगा। उसने उसके मङ्गल हाथी को अच्छी तरह सिखाया। राजा ने बाराणसी राज्य को छीनने की इच्छा से बोधिसत्त्व को साथ ले मङ्गल हाथी पर चढ़ बड़ी भारी सेना के साथ चढ़ाई की। उसने बाराणसी-नरेश के पास सन्देश भेजा—युद्ध करें या राज्य दें।

ब्रह्मदत्त ने युद्ध करने का निर्णय किया। उसने चारदीवारी के दरवाजों पर, अट्टालिकाओं पर, नगर-द्वारों पर सेना को बिठा युद्ध करना शुरू किया।

शत्रु-राजा ने मङ्गल हाथी को कवच बांध, स्वयं भी कवच पहन, हाथी के कन्धे पर बैठ तेज अंकुस ले हाथी को नगर की ओर बढ़ाया; ताकि नगर (की चारदीवारी) को तोड़ शत्रु को मार राज्य को हस्तगत कर सके। हाथी ने जब देखा कि उधर से गर्म-गारा आदि फेंका जा रहा है तथा गुलेल और नाना प्रकार के दूसरे प्रहार किए जा रहे हैं तो वह मरने से भयभीत हो पास न आ सकने के कारण लौट पड़ा।

हाथी-शिक्षक ने उसके पास जाकर कहा—'तात! तू शूर है। संग्राम-जित है। इस तरह के मौके पर पीछे लौटना तेरे लिए अयोग्य है।" इतना कह हाथी को उपदेश देते हुए यह दो गाथाएँ कहीं—

सङ्गामावचरो सूरो बलवा इति विस्सुतो
किन्नु तोरणमासज्ज पटिक्कमसि कुञ्जर!
ओमद्द खिप्पं पलिघं एसिकानि च अब्बह
तोरणानि च मद्दित्वा खिप्पं पविस कुञ्जर!

[कुञ्जर! यह प्रसिद्ध है कि तू संग्राम-जित है, शूर है, बलवान् है। तोरण के पास पहुँच कर तू क्यों पीछे लौटता है? बाधा को जल्दी तोड़ डाल। खम्भों को उखाड़ फेंक। कुञ्जर! दरवाजों का मर्दन करके तू जल्दी नगर में प्रविष्ट हो।]

इति विस्सुतो तात! तू ऐसे स्थान को जिसमें प्रहार किये हों मर्दन करके निकलने वाला होने से सङ्गामावचरो, दृढ़-हृदय वाला होने से सूरो। बल-सम्पन्न होने से बलवा, यह प्रसिद्ध है, ज्ञात है, प्रकट है। तोरणमासज्ज,

नगर-द्वार पर पहुँच। पटिक्कमसि किस कारण से पीछे हटता है? किस कारण से रुकता है? ओमद्द मर्दन कर, नीचे गिरा दे। एसिकानि च अब्बह, नगर-द्वार पर सोलह हाथ या आठ हाथ भूमि के अन्दर प्रवेश करके स्थिर रूप में गाड़े हुए स्तम्भ एसिका-स्तम्भ कहलाते हैं। उन्हें जल्दी उखाड़ फेंकने की आज्ञा देता है। तोरणानि पमद्दित्वा नगर-द्वार के पीछे के चौखट मर्दन कर। खिप्पं पविस, जल्दी से नगर में प्रवेश कर। कुञ्जर, नाग को सम्बोधित करता है।

उसे सुन बोधिसत्व ने एक ही उपदेश से रुक, स्तम्भों को सूण्ड से लपेट, 'साँप की छतरियों' की तरह उखाड़, तोरण का मर्दन कर बाधा को उखाड़ फेंका। फिर नगर-द्वार को तोड़, नगर में प्रवेश कर राजा को राज्य ले दिया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय *हाथी नन्द था। राजा आनन्द था। हाथी-शिक्षक तो मैं ही था।*

१८३. वाळोदक जातक

"वाळोदकं अप्परसं निहीनं, ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पाँच सौ मुदन खान वालों के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती में पाँच सौ [illegible] बच्चों को सौंप, शास्ता का धर्मोपदेश सुनते हुए [illegible] *में कोई गहरा ध्यानी तथा कोई ध्यानाभ्यासी, [illegible] था। शास्ता को निमन्त्रित करके भी वह मिलकर ही [illegible]*

उनको दातुन, मुख धोने का जल, सुगन्धि तथा [illegible] उनके पाँच सौ दुष्ट सेवक मुदन खाकर रहते। वह [illegible] था,

हो जाते और उठ कर अचिरवती नदी के किनारे जा कुश्ती लड़ते। लेकिन वह पाँच सौ उपासक हल्ला न मचाते हुए ध्यान-रत रहते थे।

शास्ता ने उन जूठन खाने वालों का शोर सुनकर पूछा—

"आनन्द! यह शोर कैसा है?"

"भन्ते! यह जूठन खाने वालों का शब्द है।"

"आनन्द! यह जूठन खाने वाले केवल अभी जूठन खाकर शोर नहीं मचाते, पहले भी शोर मचाते रहे हैं; और यह उपासक भी न केवल अभी शान्त हैं पहले भी शान्त रहे हैं।"

स्थविर के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर राजा के अर्थधर्मानुशासक का पद मिला।

एक बार वह राजा यह सुन कि उसके इलाके में उपद्रव हो गया है, पाँच सौ सैन्धव घोड़े तैयार करा, चतुरङ्गिनी सेना के साथ जा, इलाके को शान्त कर वाराणसी लौट आया। उसने आज्ञा दी कि घोड़े थके हैं; इसलिए उन्हें कोई नरम चीज अंगूर का पेय ही पिलाया जाए।

सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर अश्व-शाला में आ अपनी अपनी जगह खड़े हो गए। उनको जो रस दिया गया था, उसमें से बचा हुआ बहुत कसैला हो गया। आदमियों ने राजा से पूछा—"इसका क्या करें?" राजा ने आज्ञा दी—"इसमें पानी मिला, मोटे कपड़े से छान, जो गधे घोड़ों का चारा ढो कर ले गए थे, उन्हें पिला दो।" पिला दिया गया।

गधे उस कसैले पानी को पी मस्त होकर रेंकते हुए राजाङ्गन में घूमने लगे। राजा ने बड़ी खिड़की खोल राजाङ्गन को देखते हुए पास खड़े बोधिसत्व को सम्बोधित करके कहा— "मित्र! यह गधे कसैला पानी पीकर मस्त हो रेंकते हुए उछलते फिरते हैं। सिन्धु-कुल में पैदा हुए सैन्धव घोड़े सुगन्धित पेय पीकर निःशब्द बैठे हुए उछलते कूदते नहीं हैं। इसका क्या कारण है?"

यह पूछते हुए राजा ने पहली गाथा कही—

वाळोदकं अप्परसं निहीनं
पीत्वा मदो जायति गद्रभानं
इमं च पीत्वान रसं पणीतं
मदो न सञ्जायति सिन्धवानं

[गधों को थोड़े से रस वाला, तुच्छ, बोरे से छना हुआ पानी पीकर भी मद हो जाता है। सैन्धव घोड़ों को यह श्रेष्ठ रस पीकर भी मद नहीं होता।]

वाळोदकं बोरे से छाना हुआ पानी, वाळूदकं भी पाठ है। निहीनं हीन रस से युक्त, न सञ्जायति, सैन्धव घोड़ों को मद नहीं होता है, क्या कारण है?

इसका कारण कहते हुए बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

अप्पं पिवित्वान निहीनजच्चो
सो मज्जति तेन जनिन्द फुट्ठो
धोरय्हसीली च कुलम्हि जातो
न मज्जति अग्गरसं पिवित्वा

[[illegible] हीन [illegible] में पैदा हुआ थोड़ी भी पी लेने से उसके स्पर्श से [illegible] मस्त हो जाता है। स्थिर शील वाला तथा श्रेष्ठ कुल में पैदा हुआ, श्रेष्ठ [illegible] भी मस्त नहीं होता।]

[illegible] जनिन्द फुट्ठो [illegible] राजन! वह हीन कुल में पैदा [illegible] मज्जति, प्रमाद को प्राप्त होता है, धोरय्हसीली [illegible] वाला सैन्धव आदि का [illegible] अग्गरसं [illegible] पिवित्वा न मज्जति।

[illegible] का राजा [illegible] से निकलवाया।
[illegible] करते हुए कर्मानुसार परलोक

हुए) जाने से घोड़े ने सोचा कि यह मुझे सिखाना चाहता है। उसके अनुसार चलने से वह लँगड़ा हो गया। उसके लँगड़ेपन की बात राजा तक पहुँचाई गई। राजा ने वैद्यों को भेजा। उन्होंने जब देखा कि घोड़े को कोई बीमारी नहीं है, तो उन्होंने राजा से कहा कि घोड़े के शरीर में कोई रोग तो नहीं दिखाई देता।

राजा ने बोधिसत्व को भेजा "मित्र ! जा, क्या कारण है, पता लगा।" उसने जाकर शिक्षक के लँगड़े होने के कारण ही यह लँगड़ा हुआ है जान, राजा को सूचना दी; और यह दिखाने के लिए कि खराब संगत से ऐसा हो जाता है, यह गाथा कही—

> दूसितो गिरिदत्तेन हयो सामस्स पण्डवो
> पोराणं पकतिं हित्वा तस्सेव अनुविधीयति ॥

[राजा साम के पण्डव घोड़े को गिरिदत्त ने खराब कर दिया। वह अपने पहले स्वभाव को छोड़ कर उसीका अनुकरण करता है।]

हयो सामस्स सामराजा का मङ्गल घोड़ा, पोराणं पकतिं हित्वा अपनी पुरानी प्रकृति, शृङ्गार छोड़ कर, अनुविधीयति अनुसार सीखता है।

तब राजा ने पूछा—"मित्र ! अब क्या करना चाहिए ?" बोधिसत्व ने उत्तर दिया—अच्छा शिक्षक मिलने से फिर पहले की तरह हो जाएगा। और यह दूसरी गाथा कही—

> सचेव तनुजो पोसो सिखराकारकप्पितो,
> आनने तं गहेत्वान मण्डले परिवत्तये,
> खिप्पमेव पहत्वान तस्सेव अनुविधीयति ॥

[यदि सुन्दर आकार-प्रकार वाला, उस घोड़े के अनुरूप शिक्षक उसे मुँह से पकड़ कर घुमाएगा, तो वह जल्दी ही यह (लँगड़ापन) छोड़ कर उसका अनुकरण करेगा।]

चिन्ता करने से राग, द्वेष और मोह के वशीभूत हो वह अस्थिर चित्त हो गया। मन्त्रों को क्रम से न पढ़ा सकता था। जहाँ तहाँ मन्त्र समझ में न आते थे।

एक दिन वह बहुत सी सुगन्धियाँ तथा माला आदि लेकर जेतवन गया। वहाँ शास्ता की पूजा कर एक ओर बैठा। शास्ता ने कुशलक्षेम पूछने के बाद कहा—माणवक ! क्या मन्त्र पढ़ाते हो ? मन्त्रों का अभ्यास बना है ?"

"भन्ते ! पहले मुझे मन्त्र अभ्यस्त थे। लेकिन जब से घर बसाया, तब से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। इससे मन्त्रों का अभ्यास नहीं रहा।"

शास्ता ने उसे कहा—"माणवक ! न केवल अभी, पहले भी जब तेरा चित्त स्थिर था, तभी तुझे मन्त्रों का अभ्यास था। रागादि से अस्थिर होने के समय तुझे मन्त्र समझ में नहीं आए।"

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते हुए बोधिसत्व ब्राह्मणों के एक प्रधान कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर तक्षशिला में मन्त्र सीख प्रसिद्ध आचार्य्य हो बाराणसी में बहुत से क्षत्रिय, ब्राह्मण कुमारों को वेद पढ़ाने लगा।

उसके पास एक ब्राह्मण माणवक ने तीनों वेदों का अभ्यास किया। प्रत्येक पद तक में असंदिग्ध हो, उपाचार्य्य बन मन्त्र सिखाने लगा। वह आगे चलकर गृहस्थ हो गृहस्थी की चिन्ता से अस्थिर चित्त होने के कारण मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता था। आचार्य्य के पास जाने पर आचार्य्य ने पूछा—"माणवक ! क्यों तुझे मन्त्र अभ्यस्त हैं ?"

"गृहस्थ होने के समय से मेरा चित्त अस्थिर हो गया। मैं मन्त्रों का पाठ नहीं कर सकता।"

ऐसा कहने पर आचार्य्य ने "तात ! अस्थिर चित्त होने से अभ्यस्त मन्त्रों का भी प्रतिभान नहीं होता, स्थिर चित्त रहने पर विस्मृति होती ही नहीं" कह यह गाथाएँ कहीं—

> यथोदके आविले अप्पसन्ने
> न पस्सति सिप्पिकसम्बुकञ्च

सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं
एवं आविले हि चित्ते
न पस्सति अत्तदत्थं परत्थं ॥
यथोदके अच्छे विप्पसन्ने
सो पस्सति सिप्पिसम्बुकञ्च
सक्खरं वालुकं मच्छगुम्बं
एवं अनाविले हि चित्ते।
सो पस्सति अत्तदत्थं परत्थं ॥

[जिस प्रकार गँदले, मैले पानी में सीपी, शंख, कंकर, बालू तथा मछलियों का समूह नहीं दिखाई देता; उसी प्रकार अस्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ नहीं सूझता।

जिस प्रकार निर्मल, साफ पानी में सीपी, शंख, कंकर, बालू तथा मछलियों का समूह दिखाई देता है; उसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर आत्मार्थ तथा परार्थ सूझता है।]

आविले कीचड़ से गँदले हुए, अप्पसन्ने उसी गँदलेपन के कारण मैले। सिप्पिसम्बुक, सीपी और शंख। मच्छगुम्बं मछलियों का समूह। एवं आविले, इसी प्रकार रागादि से अस्थिर चित्त अत्तदत्थं परत्थं, न आत्मार्थ न परार्थ देखता है—यही अर्थ है। सो पस्सति, इसी प्रकार स्थिर चित्त होने पर वह आदमी आत्मार्थ तथा परार्थ देखता है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, सत्य (सच्चों) को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया।

सत्य (सच्चों) का प्रकाशन समाप्त होने पर ब्राह्मण कुमार स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय माणवक यही माणवक था। आचार्य तो मैं ही था।

नहीं हुआ ?" "भन्ते ! बुद्ध की याद से मन को प्रीति-युक्त कर, पानी के तल पर प्रतिष्ठित हो मैं पृथ्वी को मर्दन करते हुए की तरह आया हूँ।" "उपासक ! न केवल तूने ही बुद्ध के गुणों का स्मरण कर रक्षा प्राप्त की है। पहले भी समुद्र में नौका के टूटने पर उपासकों ने बुद्ध के गुणों की याद कर रक्षा प्राप्त की।" इतना कह, उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में काश्यप सम्यक् सम्बुद्ध के समय में एक स्रोतापन्न आर्य-श्रावक, एक नाई गृहस्थ के साथ नौका पर चढ़ा। उस नाई की भार्या ने उस नाई को उपासक को सौंपा—आर्य ! इसके सुख दुःख का भार आप पर है।

सातवें दिन वह नौका समुद्र के बीच में टूट गई। वे दोनों जने एक तख्ते से चिमटे, एक द्वीप पर पहुँचे। वह नाई पक्षियों को मार कर, पका कर खाने के समय उपासक को भी देता। वह उपासक 'मुझे नहीं चाहिए" कह कर न खाता। वह सोचता त्रिरत्न की शरण को छोड़ कर हमारे लिए यहाँ कोई दूसरा सहारा नहीं। उसने त्रिरत्न के गुणों का स्मरण किया।

उसके स्मरण करते करते उस द्वीप के नागराज ने अपने शरीर की महान् नौका बनाई। समुद्र-देवता नौका चलाने वाला बना। नौका सात रत्नों से भरी गई। तीन मस्तूल थे। इन्द्रनीलमणि की जोतें। सोने के पत्तू। समुद्र-देवता ने नौका में खड़े होकर घोषणा की—क्या कोई जम्बुद्वीप जाने वाला है? उपासक बोला—हम जायेंगे? तो आ नौका पर चढ़। उसने नौका पर चढ़ नाई को आवाज दी। समुद्रदेवता ने कहा—तुझे ही आना मिलेगा। इसे नहीं। क्या कारण है? कारण यही है कि यह शीलवान् नहीं है। मैं नौका तेरे लिए लाया हूँ। इसके लिए नहीं।

"भला। मैं प्रदान किए दान का, रक्षा किए गए शील का, तथा भावना की गई भावना का इसे हिस्सेदार बनाता हूँ।"

"स्वामी ! मैं अनुमोदन करता हूँ।"

"अब मैं ले जाऊँगा" कह देवता ने उसे भी चढ़ा, दोनों जनों को समुद्र से निकाल, नदी से वाराणसी पहुँचा अपने प्रताप से उन दोनों के घर पर धन गाड़ कर

दूसरा परिच्छेद

५. रुहक वर्ग

१९१. रुहक जातक

"अम्भो रुहक! छिन्नापि...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पहली स्त्री से लुभाए जाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा आठवें परिच्छेद की इन्द्रिय जातक[1] में आयेगी। शास्ता ने उस भिक्षु को कहा—"भिक्षु! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी इसने तुझे राजा सहित परिषद के बीच में लज्जित कर घर से बाहर निकलने के योग्य नहीं रक्खा।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसकी पटरानी की कोख से पैदा हुए। बड़े होने पर, पिता के मरने के बाद राजा बन धर्म से राज्य करने लगे। उनका रुहक नाम का पुरोहित था। उसकी पुराणी नाम की भार्या थी।

राजा ने ब्राह्मण को, अच्छे से सजाकर एक घोड़ा दिया। वह उस घोड़े पर चढ़ कर राजा की सेवा में जाता था। उसे अलंकृत घोड़े की पीठ पर आते जाते देखकर जहाँ तहाँ लोग घोड़े की प्रशंसा करते थे—

[1] इन्द्रिय जातक (४२३)

अश्व का रूप कैसा है! ओह! अत्यन्त सुन्दर है!

उसने घर आ प्रसन्न हो ब्राह्मणी को सुनाया—भद्रे! हमारा घोड़ा बड़ा सुन्दर लगता है। दोनों ओर खड़े आदमी हमारे घोड़े की ही प्रशंसा करते हैं।

वह ब्राह्मणी थोड़ी धूर्त थी। उसने उसे कहा—आर्य! तू घोड़े के सौन्दर्य के कारण को नहीं जानता। यह घोड़ा अपने साज के कारण शोभा देता है। यदि तू भी अश्व की तरह सुन्दर लगना चाहता है, तो घोड़े का साज पहन, बाजार में उतर, अश्व की तरह पैरों की टाप देते हुए, जाकर राजा को देख। राजा भी तेरी प्रशंसा करेगा। आदमी भी तेरी ही प्रशंसा करेंगे।

उस पगले ब्राह्मण ने उसकी बात सुन, अमुक कारण से यह ऐसा कहती है न समझ, उसकी बात में विश्वास कर वैसा किया। जो जो देखते वे वे मज़ाक करते हुए कहते—आचार्य! खूब शोभा देते है।

राजा ने उससे पूछा—'आचार्य! क्या पित्त प्रकोप हुआ है? क्या तू पगला हो गया है?" इस प्रकार लज्जित किया।

उस समय ब्राह्मण ने सोचा 'मैंने अनुचित किया।' वह लज्जित हुआ। ब्राह्मणी से क्रुद्ध हो, 'उसने मुझे राजा सहित सेना के बीच में लज्जित किया' सोच उसे पीट कर घर से निकालने के लिए घर गया। धूर्त ब्राह्मणी को जब मालूम हुआ कि वह उस पर क्रोधित होकर आया है, तो वह पहले ही छोटे दरवाज़े से निकल राज-महल में जा पहुँची। वह चार पाँच दिन वहीं रही। राजा ने यह समाचार जान पुरोहित को बुला कर कहा—

'आचार्य! स्त्री से दोष होता ही है। ब्राह्मणी को क्षमा करना चाहिए।" उसे क्षमा दिलाने के लिए पहली गाथा कही—

अम्भो रुहक छिन्नापि जिया संधीयते पुन,
सन्धीयस्सु पुराणिया मा कोधस्स वसं गमि ॥

[भो रुहक! धनुष की डोरी टूट कर फिर भी जुड़ जाती है। पुरानी के साथ मेल कर लो। क्रोध के वशीभूत मत हो।]

संक्षेपार्थ—भो रुहक ! छिन्नापि धनुष की डोरी जुड़ ही जाती है। इसी प्रकार तू भी पुराणी के साथ सन्धीयसु कोधस्स वसं मा गमि।

उसे सुनकर रुहक ने दूसरी गाथा कही—

विज्जमानासु मरवासु विज्जमानेसु कारिसु
अञ्‍ञं जियं करिस्साम अलञ्‍ञेव पुराणिया ॥

[मरव नाम की छाल के रहते और बनाने वालों के रहते मैं दूसरी डोरी बनवा लूँगा। मुझे पुरानी की जरूरत नहीं।]

महाराज ! मरव छाल और डोरी बनाने वाले मनुष्यों के रहते दूसरी डोरी बनवा लूँगा। इस टूटी हुई पुरानी डोरी की मुझे जरूरत नहीं। ऐसा कह उसे निकाल दूसरी ब्राह्मणी को ले आया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला, आर्य-सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय पुराणि पूर्व-भार्या थी। रुहक उद्विग्न-चित्त भिक्षु था। बाराणसी राजा तो मैं ही था।

१६२. सिरिकालकण्णि जातक

"इत्थी सिया रूपवती " यह सिरिकालकण्णि जातक महाउम्मग्ग जातक[1] में आएगी।

---

[1] महाउम्मग्ग जातक (५४६)

पर ले जाकर कहा—"इस मार्ग से जा।" बोधिसत्व को उत्साहित कर वह स्वयं जंगल में चला गया।

बोधिसत्व एक गामड़े में जाकर रहने लगे। वहाँ रहते हुए, पिता के मरने का समाचार मिला। वह बाराणसी पहुँच, कुलागत राज्य पर अधिकार कर, पदुमराजा नाम से, दस राजधर्मों से विरुद्ध न जा धर्म से राज्य करने लगे। चारों नगर-द्वारों पर, नगर के बीच में तथा महल के द्वार पर छः दानशालाएँ बनवा प्रति दिन छः हजार खर्च कर दान देते।

वह पापी स्त्री भी उस लुञ्जे को कन्धे पर बिठा जंगल से निकल बस्तियों में भिक्षा माँग कर यागु-भात इकट्ठा कर उस लुञ्जे को पोसती थी। उससे यदि कोई पूछता कि यह तेरा क्या लगता है, तो वह उत्तर देती—"मैं इसके मामा की लड़की हूँ और यह मेरी बुआ का लड़का है। मैं इसीको दी गई। सो मैं अपने स्वामी को—जो इस तरह दण्डित भी किया गया है—उठाए लिए फिर कर, भीख माँग कर पालती हूँ।" मनुष्यों ने समझा—यह पतिव्रता है। उसके बाद और भी यवागु-भात देने लगे। दूसरों ने कहा—"तू इस तरह मत घूम। पदुमराज बाराणसी में राज्य करता है। सारे जम्बूद्वीप को उद्वेलित कर दान देता है। वह तुझे देखकर प्रसन्न होगा। बहुत धन देगा।" उन्होंने उसे एक बेंत की टोकरी दी और कहा कि अपने स्वामी को इसमें बिठा कर ले जा। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को बेंत की टोकरी में बिठा, टोकरी को उठा, बाराणसी पहुँच वहाँ दानशालाओं में खाती हुई घूमने लगी।

बोधिसत्व अलङ्कृत हाथी के कन्धे पर बैठ, दानशाला जा, वहाँ आठ या दस को अपने हाथ से दान देकर घर जाते। वह अनाचारिणी उस लुञ्जे को टोकरी में बिठा, टोकरी उठा, राजा के रास्ते में खड़ी हुई। राजा ने देखकर पूछा—"यह क्या है?"

"देव! एक पतिव्रता है।"

उसे बुलवा कर, पहचान कर, लुञ्जे को टोकरी से निकलवा कर पूछा—"यह तेरा क्या लगता है?"

"देव! यह मेरी बुआ का लड़का है। कुलवालों ने मुझे इसे सौंपा है। यह मेरा स्वामी है।"

मनुष्य उनके बीच के भेद को न जानते थे। वे उस अनाचारिणी की

इस नीच-लोभी, मृतसदृश, पराई स्त्री का सेवन करने वाले को मूसल से मार डालो। और इस पापी पति-व्रता के जीते जी (इसके) कान नाक काट डालो।]

ममाहं कोमारपती मम्, जिसे यह मेरा कोमारपति, जिसे मैं कुल द्वारा सौंपी गई, स्वामी कहती हूँ। अयमेव सो न अञ्ञो। ममाहं कुमारपति, यह भी पाठ है। यही पुस्तकों में लिखा है। उसका भी यही अर्थ है। वचन-भेद मात्र है। जो राजा ने कहा, वही यहाँ आ गया। वज्झित्थियो, स्त्रियाँ बध्य होती हैं, बध करने के योग्य ही होती हैं। नत्थि इत्थीसु सच्चं, इनका स्वभाव एक नहीं रहता। इमञ्च जम्मं, यह उन दोनों को दण्डाज्ञा देने के लिए कहा।

जम्मं नीच। मुसलेन हन्त्वा, मूसल से मारकर, पीटकर, हड्डियों को तोड़कर, चूर्ण विचूर्ण करके। लुद्दं कठोर। छवं निर्गुण होने से निर्जीव मृत-सदृश। इमिस्सा च मे, इसमें मे निपातमात्र है। इसके पापपतिब्बताय अनाचारिणी दुश्शीला के जीवन्तियाव कण्णं नासं छिन्दथ।

बोधिसत्त्व ने क्रोध को न सम्भाल सकने के कारण उनको ऐसे दण्ड की आज्ञा दे दी; लेकिन वैसा करवाया नहीं। क्रोध को कम करके उसने टोकरी को उसके सिर पर ऐसे कसकर बँधवाया कि वह उतार न सके। फिर उस कुब्जे को उसमें फिकवा उसे अपने राज्य से निकलवा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उद्विग्न-चित्त भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय छ माई कोई स्थविर थे। भार्य्या किञ्चामाणविका थी। कुब्जा देवदत्त था। गोहराज आनन्द था। पदुमराज तो मैं ही था।

सुजाता कपड़े बदल अलङ्कृत हो पीछे बैठी। जिस समय गाड़ी ने नगर में प्रवेश किया, उसी समय हाथी के कन्धे पर बैठ नगर की प्रदक्षिणा करता हुआ वाराणसी नरेश उधर आ निकला। सुजाता उतर कर गाड़ी के पीछे पीछे पैदल चल रही थी। राजा ने उसे देख, उसके सौन्दर्य पर ऐसे मुग्ध हो मानों वह उसकी आँखें खींच लें रहा हो, एक अमात्य को भेजा कि पता लगाए कि उसका स्वामी है या नहीं? उसने जाकर पता लगाया कि उसका स्वामी है और आकर निवेदन किया—"देव! यह विवाहिता है। गाड़ी में बैठा हुआ आदमी उसका स्वामी है।"

राजा अपनी आसक्ति को हटाने में असमर्थ था। उसने कामातुर हो सोचा, किसी उपाय से इस आदमी को मरवा कर स्त्री को लूंगा; और एक आदमी को बुलाकर कहा—"अरे! यह चूडामणि ले जाकर रास्ते चलते हुए की तरह जाते हुए इसे इस आदमी की गाड़ी में फेंक कर आओ।" उसे *चूडामणि देकर भेजा। उसने "अच्छा" कह उसे ले जाकर गाड़ी में डाल आकर* कहा—'देव! मैंने डाल दी।" राजा ने कहा—मेरी चूडामणि खो गई। लोगों ने शोर मचा दिया। राजा ने आज्ञा दी—"सब दरवाजों को बन्द कर, रास्ते रोक कर चोर का पता लगाओ।" राजपुरुषों ने वैसा ही किया। नगर एक सिरे से क्षुब्ध हो गया। एक जन आदमियों को लेकर बोधिसत्व के पास जा बोला—"अरे! गाड़ी रोको। राजा की चूडामणि खो गई है। गाड़ी की तलाशी लेंगे।" उसने गाड़ी की तलाशी लेते हुए अपनी रक्खी हुई मणि उठा, बोधिसत्व को पकड़, 'यह मणि-चोर है' कहते हुए हाथों और पाँवों से पीट, उसके हाथों को पिछली तरफ बाँध उसे ले जाकर राजा के सामने पेश किया—यह मणि-चोर है। राजा ने आज्ञा दी—इसका सिर काट डालो।

राजपुरुष उसे मार मार बेंतों से पीटते हुए नगर से बाहर ले गए।

सुजाता भी गाड़ी छोड़ दोनों हाथ उठा 'मेरे कारण स्वामी इस दुःख को *प्राप्त हुए' कह रोती पीटती उसके पीछे पीछे चली। राज पुरुषों ने बोधिसत्व* का सिर काटने के लिए उसे सीधे लिटाया। उसे देख सुजाता ने अपने सदाचार का ध्यान कर "मालूम होता है इस लोक में कोई ऐसा देवता नहीं है जो पापी दुस्साहसियों को सदाचारियों पर अत्याचार करने से रोक सके" कह, रोते पीटते पहली गाथा कही—

ब्राह्मण-गृहपति आदि देवेन्द्र शक्र को देखकर प्रसन्न हुए—अधार्मिक राजा मारा गया। अब हमें शक्र का दिया हुआ धार्मिक राजा प्राप्त हुआ। शक्र ने भी आकाश में खड़े हो कहा—"यह शक्र का बनाया हुआ राजा अब से धर्मपूर्वक राज्य करेगा। यदि राजा अधार्मिक होता है तो वर्षा असमय होती है, समय पर नहीं होती है, अकाल-भय, रोग-भय तथा शस्त्र-भय बना ही रहता है।" इस प्रकार उपदेश देते हुए शक्र ने दूसरी गाथा कही—

> अकाले वस्सति तस्स काले तस्स न वस्सति
> सग्गा च चवतिट्ठाना ननु सो तावता हतो ॥

[उसके राज्य में असमय वर्षा होती है, समय पर नहीं होती। वह स्वर्ग-स्थान से गिरता है। निश्चय से वह उतने से मारा गया।]

अकाले, अधार्मिक राजा के राज्य करने के समय—अनुचित समय पर खेती के पकने के समय या कटाई तथा मर्दन करने के समय देव वस्सति। काले, योग्य समय पर, बोने के समय, खेती छोटी रहने के समय या दाना पड़ने के समय न वस्सति। सग्गा च चवतिट्ठाना, स्वर्ग-स्थान से अर्थात् देवलोक से। अधार्मिक राजा अप्रतिलाभ होने से देवलोक से च्युत होता है। यह भी अर्थ है कि स्वर्ग में भी राज्य करता हुआ अधार्मिक राजा वहाँ से च्युत होता है। ननु सो तावता हतो, निश्चय से वह अधार्मिक राजा इस से मारा जाता है। अथवा 'नु' यहाँ एकान्तवाची है, न केवल वह इतने से मारा गया, बल्कि वह आठ महा नरकों में तथा सोलह उस्सद नरकों में चिरकाल तक मारा जाएगा।

इस प्रकार शक्र जन-समूह को उपदेश दे अपने देवस्थान को ही चला गया। धार्मिक राजा ने भी धर्म से राज्य करते हुए स्वर्ग-मार्ग को भरा।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय अधार्मिक राजा देवदत्त था। शक्र अनुरुद्ध था। सुजाता राहुल-माता थी। शक्र का बनाया हुआ राजा तो मैं ही था।

"एक अलंकृत स्त्री को देखकर कामुकता का भाव उत्पन्न हो जाने के कारण।" शास्ता ने कहा—"भिक्षु ! स्त्रियाँ अपने रूप, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श तथा हावविलास से पुरुषों को आसक्त कर, जब उन्हें अपने वश में हुआ समझती हैं, तो उनका शील और धन नष्ट कर डालती हैं। इसीसे यह यक्षिणियाँ कहलाती है। पहले भी यक्षिणियों ने स्त्रियों के हावविलास से एक काफले के पास जा, व्यापारियों को आकृष्ट कर, अपने वशीभूत कर, फिर दूसरे आदमियों को देख पहले के सब आदमियों को मार डाला। और दोनों दाढ़ों से रक्त बहाते हुए, उन्हें मुरमुरे की तरह खा डाला।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में ताम्रपर्णी द्वीप में सिरीसवत्थु नाम का यक्षों का नगर था। वहाँ यक्षिणियाँ रहती थीं। जिन व्यापारियों की नौकाएँ टूट जातीं, उनके आने पर वे सजधज कर खाद्य भोज्य लिवा, दासियों से घिरी हुई तथा गोद में बच्चों को उठाए व्यापारियों के पास जातीं। उन पर यह प्रकट करने के लिए कि वे मनुष्य-निवास में आए हैं, जहाँ तहाँ कृषि, गोरक्षा आदि करते हुए आदमी, गौएँ, कुत्ते आदि दिखातीं। व्यापारियों के पास जाकर कहतीं—यह यवागु पीयें। भोजन करें। खाद्य खाएँ। व्यापारी न जानने के कारण उनका दिया खा लेते।

उनके खा-पीकर विश्राम करने के समय उनसे कुशल क्षेम पूछतीं—"आप कहाँ के रहने वाले हैं? कहाँ से आए हैं? कहाँ जाएँगे? यहाँ किस कार्य से आए?" [illegible] कहते कि नौका टूट जाने के कारण इधर आये। तब वे कहतीं—"आर्यो ! अच्छा ! हमारे स्वामियों को भी नौका पर चढ़ कर गए तीन वर्ष हो गए। वे मर गए होंगे। आप लोग भी व्यापारी ही हैं। हम आपकी च[illegible]।"

इस प्रकार वे [illegible] व्यापारियों को स्त्रियों के हावविलास से आसक्त कर [illegible]। और पहले से पकड़े हुए आदमी (अभी जीवित) होते, [illegible] जंजीर से बाँध कारागार में डाल देतीं। जब उन्हें अपने निवास-स्थान पर दूसरे आदमी जिनकी नौकाएँ टूट गई हों, न मिलते तो उधर

"जो मेरी पीठ पर चढ़ो।"

कुछ चढ़े। कुछ ने पूँछ पकड़ी। कुछ हाथ जोड़े खड़े ही रहे। बोधिसत्व अपने प्रताप से सभी ढाई सौ व्यापारियों को, जो हाथ जोड़े खड़े थे उन तक को उठाकर ले गए। वहाँ उन्हें उन उनके स्थान पर पहुँचा स्वयं अपने निवास-स्थान को गए। वह यक्षिणियाँ भी औरों के आने पर उन ढाई सौ व्यापारियों को जो पीछे रह गए थे मार कर खा गईं।

शास्ता ने भिक्षुओं को सम्बोधन कर कहा—"भिक्षुओ, जैसे उन यक्षिणियों के वशीभूत हुए व्यापारी विनाश को प्राप्त हुए। बादल-अश्व-राज का कहना मानने वाले अपने अपने स्थान पर पहुँच गए। इसी प्रकार बुद्धों के उपदेश के अनुसार न चलने वाले भिक्षु, भिक्षुणियाँ तथा उपासक और उपासिकाएँ भी चारों नरकों तथा पाँच प्रकार के बन्धन, दण्ड आदि से महान् दुःख को प्राप्त होते हैं। उपदेश मानने वाले तीन कुल-सम्पत्तियाँ,[1] छः काम-स्वर्ग तथा बीस ब्रह्मलोकों को प्राप्त हो, अमृत महानिर्वाण को साक्षात् कर महान् सुख का अनुभव करते हैं।" अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कहीं—

> ये न काहन्ति ओवादं नरा बुद्धेन देसितं,
> ब्यसनं ते गमिस्सन्ति रक्खसीहीव वाणिजा ॥१॥
> ये च काहन्ति ओवादं नरा बुद्धेन देसितं,
> सोत्थि पारङ्गमिस्सन्ति वालाहेनेव वाणिजा ॥२॥

[जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार आचरण नहीं करते वे उसी तरह दुःख को प्राप्त होते हैं जैसे राक्षसियों द्वारा व्यापारी। जो बुद्ध के उपदेश के अनुसार चलते हैं वे उसी तरह सकुशल पार पहुँच जाते हैं जैसे बादल (के अश्व) की सहायता से व्यापारी।]

ये न काहन्ति जो नहीं करेंगे। ब्यसनं ते गमिस्सन्ति, वे महान् दुःख को प्राप्त होंगे। रक्खसीहीव वाणिजा राक्षसियों द्वारा लुभाए गए व्यापारियों की तरह। सोत्थि पारङ्गमिस्सन्ति बिना किसी विघ्न के निर्वाण को प्राप्त

---

[1] ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य।

उपाध्याय ने क्रोध से उठकर पीटा—"तेरा मेरा विश्वास क्या है?"

उसकी यह करनी भिक्षुओं में प्रकट हो गई। एक दिन भिक्षुओं ने धर्म-सभा में बातचीत चलाई—"आयुष्मानो! अमुक तरुण-भिक्षु ने उपाध्याय का विश्वास कर वस्त्र-खण्ड से उसमें जुआ रखने की थैली बनाई। उपाध्याय ने 'तेरा मेरा क्या विश्वास है' कह क्रोध से उठकर पीटा।

शास्ता ने आकर पूछा—"भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो?"

"अमुक बातचीत।"

"भिक्षुओ, यह भिक्षु न केवल अभी अपने शिष्य का अविश्वासी है, पहले भी अविश्वासी ही था।"

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी देश में ब्राह्मण-कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर गण के नेता हो वह हिमालय-प्रदेश में रहने लगे।

उन ऋषियों के समूह में एक तपस्वी था, जो बोधिसत्व का कहना न मान एक हाथी के बच्चे को जिसकी माँ मर गई थी, पालता था। बड़े होने पर वह उस तपस्वी को मार जंगल में चला गया। उसका शरीर-कृत्य कर ऋषियों ने बोधिसत्व को घेर कर पूछा—"भन्ते! मित्र या अमित्र कैसे पहचाना जा सकता है?"

बोधिसत्व ने 'इस इस बात से' कहते हुए यह गाथा कही—

न नं उम्हयते दिस्वा न च नं पटिनन्दति
चक्खूनि चस्स न ददाति पटिलोमञ्च वत्तति ॥१॥
एते भवन्ति आकारा अमित्तस्मिं पतिट्ठिता
येहि अमित्तं जानेय्य दिस्वा सुत्वा च पण्डितो ॥२॥

[न उसे देखकर मुस्कराता है, न प्रसन्न होता है। न उसकी ओर आँख

करता है; और उलटा बर्तता है। ये अमित्र के रंगढंग हैं, उन्हें देख सुनकर पण्डित आदमी को अपने अमित्र को पहचानना चाहिए।]

न नं उम्हयते दिस्वा जो जिसका अमित्र होता है वह उसे देख कर न मुस्कराता है, न हँसता है; प्रसन्नाकार प्रदर्शित नहीं करता। न च नं पटि-नन्दति उसकी बात सुनकर उसे आनन्द नहीं होता, 'अच्छा' कहा है, 'सुभाषित है' (कह) अनुमोदन नहीं करता। चक्खूनि चस्स न ददाति, आँख से आँख मिलाकर सामने नहीं देखता, और दूसरी ओर से जाता है। पटिलोमञ्च वत्तति, उसका काय-कर्म अथवा वाणी का कर्म भी उसे अच्छा नहीं लगता; विरोधी-भाव ही ग्रहण करता है। आकारा, बातें। येहि अमित्तं जिन बातों से ये बातें। दिस्वा च सुत्वा च पण्डितो आदमी को चाहिए कि पहचान करे कि यह मेरा अमित्र है। इससे विरुद्ध बातों से मित्र-भाव जानना चाहिए।

इस प्रकार बोधिसत्व मित्र तथा अमित्र के लक्षण कह ब्रह्मविहारों की भावना कर ब्रह्मलोकगामी हुए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय हाथी को पालने वाला तपस्वी शिष्य था। हाथी उपाध्याय था। ऋषिगण बुद्ध-परिषद थी। गण का नेता तो मैं ही था।

१९८. राध जातक[1]

"पवासा आगतो तात...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक उत्कण्ठित-चित्त भिक्षु के बारे में कही।

---

[1] राधजातक (१४५)

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—"भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है ?"

"भन्ते ! सचमुच।"

"किस कारण से ?"

"एक अलङ्कृत स्त्री को देखकर कामुकता के कारण।"

"भिक्षु, स्त्री की जाति की सँभाल नहीं की जा सकती। पूर्व समय में द्वारपाल रखकर हिफाजत करने वाले भी हिफाजत नहीं कर सके। तुझे स्त्री से क्या ? मिलने पर भी उसकी हिफाजत नहीं की जा सकती।" इतना कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व तोते की योनि में पैदा हुए। उसका नाम था राध। उसके छोटे भाई का नाम था पोट्ठपाद। उन दोनों को ही, जब वह छोटे ही थे एक चिड़ीमार ने पकड़ कर वाराणसी के एक ब्राह्मण को दिया। ब्राह्मण ने उन्हें पुत्र की तरह पाला। उसकी ब्राह्मणी दुराचारिणी थी, उसकी हिफाजत नहीं की जा सकती थी।

ब्राह्मण ने व्यापार करने के लिए जाते समय उन तोते-बच्चों को बुलाकर कहा—"तात ! मैं व्यापार के लिए जाता हूँ। समय असमय तुम अपनी माता की करनी पर नजर रखना। दूसरे आदमी का अन्दर आना जाना देखना।" इस प्रकार वह उन तोते-बच्चों को ब्राह्मणी सौंप कर गया।

वह उसके बाहर जाने के समय से ही अनाचार करने लगी। रात को भी, दिन को भी आने जाने वालों की सीमा न रही। उसे देख पोट्ठपाद ने राध से कहा— 'ब्राह्मण इस ब्राह्मणी को हमें सौंप कर गया। यह पाप-कर्म करती है। मैं इसे मना करूँ?' राध ने कहा— 'मत बोल।' वह उसका कहना न मान बोला— 'अम्म ! तू पापकर्म किस लिए करती है?'

उसने उसे मार डालने की इच्छा से कहा—'तात ! तू मेरा पुत्र है। अब से न करूँगी। आ, यहाँ आ।' इस प्रकार प्यार करती हुई की तरह

तं तं गामपति ब्रूमि कदरे अप्पस्मिं जीविते,
द्वे मासे कारं करवान मंसं जरग्गवं किसं;
अप्पत्तकाले चोदेसि तम्पि मय्हं न रुच्चति ॥

[दोनों मुझे पसन्द नहीं; दोनों मुझे अच्छे नहीं लगते। यह जो कोठे पर चढ़ कहती है—(धान) नहीं दिखाई देते। हे ग्रामपति ! मैं यह कहता हूँ कि जीवन इतना कठिन होने पर भी तू बूढ़े कृश बैल के मांस (के मूल्य) का दो महीने का करार करके समय के पूर्व ही उलाहना देता है। यह भी मुझे अच्छा नहीं लगा।]

तं तं गामपति ब्रूमि भो ! ग्राम के मुखिया इस कारण से यह कहता हूँ। कदरे अप्पस्मिं जीविते, हमारा जीवन दुःखी है, जड़ है, रूखा है, न्यून है, अल्प है, मन्द है, परिमित है। इस प्रकार के जीवन के होने पर द्वे मासे कारं करवान मंसं जरग्गवं किसं हमारे मांस लेते समय बूढ़ा, कृश, दुर्बल बैल देते हुए तूने दो महीने की अवधि बाँधी थी कि दो महीने में मूल्य देना। इस प्रकार करार करके, अवधि बाँध कर अप्पत्तकाले चोदेसि, उस समय के आने से पूर्व ही दोष लगाता है। तम्पि मय्हं न रुच्चति यह जो पापिन दुराचारिणी कोठे में धान नहीं है जानती हुई अनजान की तरह कोट्ठमोतिण्णा कोठे के द्वार पर खड़ी हो न दस्सं इति भासति। यह भी और यह जो तू असमय माँगता है तम्पि यह दोनों न मुझे पसन्द है, न अच्छा लगता है।

इस प्रकार कहते कहते बोधिसत्व ने गाँव के मुखिये को केशों से पकड़, खींच कर घर के बीच में गिराया। "मैं गाँव का मुखिया हूँ" समझ दूसरों की रक्षा, हिफ़ाज़त की हुई चीज़ के प्रति अपराध करता है ?" आदि बातों से अपशब्द कह, पीट कर, दुर्बल कर, गरदन से पकड़ घर से निकाल दिया। उस दुष्ट स्त्री को भी केशों से पकड़ कोठे से उतार, पीटते हुए डाँटा—"यदि फिर ऐसा करेगी, तो जानेगी ?"

उसके बाद से गाँव का मुखिया उस घर की ओर नजर भी नहीं उठा सका। वह पापिन भी फिर मन से भी दुराचार नहीं कर सकी।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण-कुल में जन्म ग्रहण कर बड़े हो तक्षशिला गए। वहाँ शिल्प सीख लौट कर वाराणसी में प्रसिद्ध आचार्य हुए।

एक ब्राह्मण की चार लड़कियाँ थीं। वह इसी प्रकार चार जनों को चाहती थी। ब्राह्मण ने यह न जानते हुए कि किसे दें सोचा कि आचार्य को पूछ कर जिसे देना योग्य होगा, उसीको दूँगा। उसने आचार्य के पास आ यह प्रश्न पूछते हुए पहली गाथा कही—

> सरीरदब्बं वद्धब्यं सोजच्चं साधु सीलियं
> ब्राह्मणन्त्वेव पुच्छाम कन्नु तेसं वनिम्हसे ॥

[शरीर के सौन्दर्य वाले को, आयु बड़ी वाले को, जाति बड़ी वाले को वा सदाचारी को ? हे ब्राह्मण ! तुझे पूछते हैं कि उन्हें किसे दें ?]

सरीरदब्बं आदि से उन चारों में विद्यमान् गुणों का प्रकाशन किया गया है। अभिप्राय यह है—मेरी लड़कियाँ चार प्रकार के आदमियों को चाहती हैं। उनमें से एक के पास सरीरदब्बं है, शरीर सम्पत्ति है, सौन्दर्य है। एक के पास वद्धब्यं वृद्धभाव, वयस्थान है। एक के पास सोजच्चं अच्छी जाति वाला होना, जाति सम्पत्ति है। सुजच्चं भी पाठ है। एक के पास साधुसीलियं सुन्दर चरित्र वाला होना, सदाचार सम्पत्ति है। ब्राह्मणन्त्वेव पुच्छाम: उनमें से यह अमुक को देनी चाहिए, हम इसका निश्चय न कर सकने के कारण आप ब्राह्मण को ही पूछते हैं। कन्नु तेसं वनिम्हसे उन चार जनों में से किसका वरण करें ? किसकी इच्छा करें ? पूछता है कि वे कुमारियाँ किसे दें ?

यह सुन आचार्य ने कहा—"रूप सम्पत्ति आदि विद्यमान रहने पर भी दुराचारी निन्दित है। इसलिए वह ठीक नहीं। हमें शीलवान् ही अच्छा लगता है।"

इस विचार को प्रकट करने के लिए दूसरी गाथा कही—

अत्थो अत्थि सरीरस्मिं वद्धव्यस्स नमोकरे,
अत्थो अत्थि सुजातस्मि सीलं अस्माकरुच्चति ॥

[शरीर की भी अपनी विशेषता है, ज्येष्ठ को नमस्कार होता है। सुजात की भी विशेषता है; लेकिन हमें तो शीलवान् अच्छा लगता है।]

अत्थो अत्थि सरीरस्मि, रूपवान् शरीर में भी अर्थ, विशेषता, उन्नति होती है। नहीं होती है, नहीं कहते। वद्धव्यस्स नमो करे, ज्येष्ठ को हम नमस्कार ही करते हैं। ज्येष्ठ की ही वन्दना होती है। अत्थो अत्थि सुजातस्मि, सुजात पुरुष की भी उन्नति होती है। जाति-सम्पत्ति भी इच्छा करने ही की चीज है। सीलं अस्माकरुच्चति, हमें शील ही अच्छा लगता है। शीलवान्, सदाचारी शरीर-सौन्दर्य से रहित भी पूज्य प्रशंसनीय होता है।

ब्राह्मण ने उसकी बात सुन सदाचारी को ही लड़कियाँ दीं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में ब्राह्मण सोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मण यही था; प्रसिद्ध आचार्य तो मैं ही था।

दूसरा परिच्छेद

६. नतंदल्ह वर्ग

२०१. बन्धनागार जातक

"न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा...." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बन्धनागार के बारे में कही।

वर्तमान कथा

उस समय बहुत से सेंध लगाने वाले, बटमार तथा मनुष्यघातक चोरों को लाकर राजा के सामने पेश किया गया। राजा ने उन्हें बेड़ी से, रस्सी से तथा जंजीर से बँधवा दिया।

देहात के तीस भिक्षु शास्ता का दर्शन करने की इच्छा से आए। दर्शन तथा प्रणाम कर चुकने के अगले दिन भिक्षाटन करते हुए वह बन्धनागार पहुँचे। वहाँ चोरों को देख, भिक्षाटन से लौट सन्ध्या के समय शास्ता के पास आ निवेदन किया—भन्ते! आज हमने भिक्षाटन करते समय बहुत से चोरों को बेड़ी आदि से बँधे हुए महान दुःख अनुभव करते देखा। वे उन बन्धनों को काटकर भाग नहीं सकते। क्या उन बन्धनों से बढ़कर भी कोई बन्धन है?

शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह क्या बन्धन है? यह जो धन-धान्य-पुत्र तथा स्त्री आदि के प्रति तृष्णा रूपी बन्धन है यह इन बन्धनों से सौ गुना, हजार गुना कड़ा बन्धन है। इस प्रकार के अत्यन्त कठिनाई से टूटने वाले महान् बन्धन को भी, पुराने पण्डितों ने तोड़ कर हिमालय में प्रवेश कर प्रव्रज्या ग्रहण की।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक दरिद्र गृहस्थ के घर में पैदा हुआ। उसके बड़े होने पर पिता मर गया। वह नौकरी करके माता को पालने लगा।

उसके अनिच्छा प्रकट करने पर भी उसकी माँ ने उसे एक लड़की ला दी; और स्वयं मर गई। उसकी भार्या की कोख में गर्भ रह गया। उसे नहीं मालूम था कि भार्या की कोख में गर्भ है। उसने कहा—भद्रे ! तू नौकरी मजदूरी करके अपना पालन पोषण कर। मैं प्रव्रजित होऊँगा।

उसने उत्तर दिया—मेरी कोख में गर्भ है। बच्चे को देख कर प्रव्रजित होना।

बोधिसत्व ने 'अच्छा' कह स्वीकार किया और उसके बच्चे को जन्म देने पर पूछा—भद्रे ! तूने कुशलपूर्वक बच्चे को जन्म दिया। अब मैं प्रव्रजित होऊँ ?

उसने कहा कि जब तक बच्चा स्तन का दूध पीता है, तब तक प्रतीक्षा करें। इस बीच में वह फिर गर्भवती हो गई। उसने सोचा इसकी रजामन्दी से जाना न हो सकेगा; इसे बिना कहे ही भाग कर प्रव्रजित होऊँगा। वह बिना कहे ही रात को उठकर भाग गया। उसे नगर-रक्षकों ने पकड़ा। बोधिसत्व ने कहा—स्वामी ! मैं 'माँ का पोषण करने वाला' हूँ। मुझे छोड़ दें।

उसने अपने आपको छुड़ा एक स्थान पर ठहर, मुख्य द्वार से ही निकल बोधिसत्व ने हिमालय में प्रवेश किया। वहाँ ऋषियों के प्रव्रज्या क्रम के अनुसार प्रव्रजित हो अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कर ध्यान-क्रीड़ा में रत हो रहने लगा।

वहाँ रहते हुए 'ऐसे दुष्करता से तोड़े जा सकने वाले पुत्र-दारा के प्रति आसक्ति के बन्धन को भी तोड़ते हैं' उल्लास-वाक्य कहते हुए उसने यह गाथाएँ कहीं—

न तं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा,
यदायसं दारुजं बब्बजञ्च;
सारत्तरत्ता मणिकुण्डलेसु,
पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा ॥

एतं दळ्हं बन्धनमाहु धीरा,
ओहारिनं सिथिलं दुप्पमुञ्चं;
एतम्पि छेत्वान वजन्ति धीरा,
अनपेक्खिनो कामसुखं पहाय ॥

[लोहे के, लकड़ी के या बब्बड़ (की रस्सी) के जो बन्धन हैं, धीर-जन उन्हें (असली) बन्धन नहीं मानते। यह जो मणि में, कुण्डलों में आसक्ति है, यह जो पुत्र-दारा की अपेक्षा है; धीर-जन इन्हें दृढ़ बन्धन मानते हैं। यह नीचे गिराने वाले है, शिथिल है और कठिनाई से दूर होते हैं। धीर-जन इन्हें भी छेद कर, काम-भोगों के सुख को छोड़, अपेक्षा रहित हो चल देते हैं।]

धृतिमान् को ही धीर। धिक्कार किया पापों को इसलिए धीर। या धी का मतलब है प्रज्ञा; उस प्रज्ञा से युक्त धीर बुद्ध, प्रत्येक-बुद्ध, बुद्ध-श्रावक और बोधिसत्त्व—यह ही धीर हैं। यदायसं आदि में यं जंजीर आदि लोहे से बना हुआ आयस, अन्दुबन्धन। बब्बजञ्च, जो बब्बड़-तृण या अन्य वल्कल आदि की रस्सी से बना हुआ रस्सी-बन्धन। तं धीरा दळ्हं, मजबूत नहीं कहते। सारत्तरत्ता, अधिक अनुरक्त होकर आसक्त; बहुत राग से अनुरक्त मणि-कुण्डलेसु, मणि में और कुण्डलों में अथवा मणियुक्त कुण्डलों में।

एतं दळ्हं, जो मणिकुण्डलों में अत्यन्त अनुरक्त हैं; उन्हीं का जो राग है, या उनकी पुत्र-दारा में अपेक्षा है, तृष्णा है; इस बन्धन को ही धीर-जन दृढ़ बन्धन कहते हैं। ओहारिनं, निकाल कर चार नरकों में गिराते हैं; उतारते हैं, नीचे ले जाते हैं; इसलिए ओहारिनं। सिथिलं जहाँ बन्धन पड़ा होता है उस जगह की चमड़ी या मांस नहीं छिलता; खून भी नहीं निकलता; 'बन्धन पड़ा है' यह भी पता नहीं लगने देते इसलिए सिथिलं। दुप्पमुञ्चं, तृष्णा-लोभ रूप से एक बार भी पैदा हुआ बन्धन उसी तरह कठिनाई से पीछा छोड़ता है जैसे एक बार किसीको पकड़ लेने पर कछुआ। एतम्पि छेत्वान, ऐसा दृढ़ बन्धन भी ज्ञानरूपी तलवार से काट कर धीर-जन लोहे की जंजीर तोड़ने वाले मस्त हाथी की तरह, पिंजरे को तोड़ने वाले सिंह-बच्चे की तरह, वस्तु-कामना तथा कामना को कूड़ा फेंकने के स्थान को घृणा करने की तरह अनपेक्खिनो

चीवर के सिरे से पकड़, हाथों से पकड़, सिर से पकड़, नाक को रगड़, कान पकड़ घसीटते हुए, हाथ से गुदगुदी उठाते हुए पात्रचीवर सौंप शास्ता के पास गए। वहाँ शास्ता को प्रणाम कर बैठे। शास्ता ने मधुर-वाणी से कुशल क्षेम पूछा। तब वे बोले—भन्ते ! लकुण्टक भद्दिय नाम के आपके एक शिष्य स्थविर मधुर भाषी धर्मोपदेशक है। वह इस समय कहाँ है ?

"भिक्षुओ, क्या उसे देखना चाहते हो ?"

"भन्ते ! हाँ।"

"भिक्षुओ, जिसे तुम द्वार-कोठे पर देख, चीवर के कोने आदि से पकड़ हाथ से छेड़ते हुए आए, वही यह है।"

"भन्ते ! इस तरह का प्रार्थी,[1] इस तरह का उच्चाभिलाषी[2] किस कारण से इतने छोटे आकार का पैदा हुआ ?"

"अपने पूर्व-कृत पापकर्म के कारण।" उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व देवेन्द्र शक्र हुए। उस समय ब्रह्मदत्त जीर्ण जरा-प्राप्त हाथी, घोड़े वा बैल को नहीं देख सकता था, देखते ही क्रीड़ा करने की इच्छा से उसका पीछा करता था। पुरानी गाड़ी देख कर तुड़वा देता; वृद्ध स्त्रियों को देख, उन्हें बुलवा, उनके पेट पर प्रहार दिलवा, उन्हें गिरवा, फिर उठवा डरवाता। वृद्ध आदमियों को देख बाजीगर की तरह कलाबाजियाँ खिलवाता। न दिखाई देने की अवस्था में यदि यह सुन भी लेता कि अमुक घर में वृद्ध मनुष्य है, तो उसे बुलवा कर खेलता।

मनुष्य लज्जित होकर अपने अपने माता पिता को विदेशों में भेजने लगे। माता की सेवा, पिता की सेवा का कर्तव्य टूटने लगा। राजसेवक भी क्रीड़ा-

---

[1] जिसने पूर्व-बुद्धों के पास प्रार्थना की।

[2] जिसने पूर्व-जन्म में ऊँची अभिलाषा से सत्कर्म किए।

[हंस, क्रौञ्च, मोर, हाथी तथा चितकबरा मृग सभी सिंह से डरते हैं। शरीर से बड़ा-छोटा नहीं होता। इसी प्रकार मनुष्यों में चाहे आयु का छोटा हो लेकिन यदि वह बुद्धिमान् है तो वह ही बड़ा है। बड़े शरीर वाला मूर्ख बड़ा नहीं होता।]

पसवामिगा, पसद नामक मृग, पसद मृग तथा शेष मृग भी अर्थ है। पसव-मिगा भी पाठ है। पसद मृग अर्थ है। नत्थि कायस्मि तुल्यता, शरीर से बड़ा छोटा नहीं है; यदि हो तो बड़े शरीर वाले पसद मृग और हाथी सिंह को मार डालें। सिंह हंसादि क्षुद्र शरीर वालों को ही मारे। छोटे ही सिंह से डरें, बड़े नहीं; ऐसा नहीं है। इसलिए सभी सिंह से डरते हैं। सरीरवा मूर्ख बड़े शरीर वाला होने पर भी बड़ा नहीं होता। इसलिए लकुण्टक भद्दिय यद्यपि शरीर से छोटा है; इससे यह न समझो कि वह ज्ञान में भी छोटा है।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उन भिक्षुओं में से कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हो गए।

उस समय राजा लकुण्टक भद्दिय था। उसके क्रीड़ा-प्रिय होने से दूसरे क्रीड़ा-प्रिय हो गए। शक्र मैं ही था।

२०३. खन्धवत्त जातक

"विरूपक्खेहि मे मेत्तं ..." इसे शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक भिक्षु के बारे में कहा।

[हंस, क्रौञ्च, मोर, हाथी तथा चितकब
शरीर से बड़ा-छोटा नहीं होता। इसी प्रकार
हो लेकिन यदि वह बुद्धिमान् है तो वह ही ब
बड़ा नहीं होता।]

पसदामिगा, पसद नामक मृग, पसद मृग ह
मिगा भी पाठ है। पसद मृग अर्थ है। नत्थि।
छोटा नहीं है; यदि हो तो बड़े शरीर वाले पस
डालें। सिंह हंसादि क्षुद्र शरीर वालों को ही म
नहीं, ऐसा नहीं है। इसलिए सभी सिंह से डर
वाला होने पर भी बड़ा नहीं होता। इसलिए
से छोटा है, इससे यह न समझो कि वह ज्ञान

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को
बैठाया। सत्यों के अन्त में उन भिक्षुओं में से को
कोई अनागामी तथा कोई अर्हत हो गए।

उस समय राजा लकुण्टक भद्दिय था।
क्रीडा-प्रिय हो गए। शक्र मैं ही था।

अप्पमाणो बुद्धो अप्पमाणो धम्मो अप्पमाणो संघो।

सीमित (प्रमाण-सहित) विकारों का अभाव होने से और गुण असीम (अप्रमाण) होने से बुद्ध रत्न असीम (अप्रमाण) है; धर्म, नौ प्रकार[1] का लोकोत्तर धर्म; उसकी भी सीमा नहीं की जा सकती इसलिए असीम (अप्रमाण)। उस असीम (अप्रमाण) धर्म से युक्त होने के कारण संघ भी असीम (अप्रमाण)।

इस प्रकार बोधिसत्व उन तीनों रत्नों के गुणों को स्मरण करने के लिए कह तथा उन तीन रत्नों के गुणों का असीम होना दिखा सीमित प्राणियों के बारे में बोले—

> पमाणवन्तानि सिरिंसपानि अहिविच्छिका,
> सतपदी उण्णानाभि सरबूमूसिका।

[रेंगने वाले, सर्प, बिच्छू, गूजर, मकड़ी तथा छिपकली—यह सब सीमा वाले हैं।]

सिरिंसपा, सब दीर्घाकार प्राणियों का यह नाम है। वे सरक कर चलते हैं या सिर से चलते हैं, इसीलिए सिरिंसपा। अहि आदि उनके स्वरूप का वर्णन किया गया है। उण्णनाभि मकड़ी, उसकी नाभि से ऊन जैसा सूत निकलता है; इसलिए उण्णनाभि कहलाती है। सरबू, छिपकली।

इस प्रकार बोधिसत्व ने 'क्योंकि इनके अन्दर जो रागादि हैं वह सीमा वाले धर्म हैं, इसलिए ये सिरिंसप आदि सीमा वाले हैं किन्तु तीनों रत्नों के प्रताप से यह सीमा वाले हमारी दिन रात रक्षा करें' कह तीनों रत्नों के गुणों का अनुस्मरण करने को कहा। उनके पास जो कर्तव्य है वह करने के लिए यह गाथा कही—

---

[1] चार मार्ग, चार फल तथा निर्वाण।

२०४. वीरक जातक

"अपि वीरक पस्सेसि. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय बुद्ध का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

देवदत्त की परिषद लेकर स्थविरों के लौट आने पर शास्ता ने पूछा— सारिपुत्तो ! तुम्हें देखकर देवदत्त ने क्या किया ?

"भन्ते ! सुगत का रंग-ढंग बनाया।"

"सारिपुत्तो ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नक़ल करके विनाश को प्राप्त हुआ। पहले भी प्राप्त हुआ है।"

स्थविरों के प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में जल-कौए की योनि में पैदा हो एक तालाब के पास रहते थे। उसका नाम था वीरक।

उस समय काशी देश में अकाल पड़ा। मनुष्य कौओं को भोजन देने या यज्ञ-नाग बलिकर्म करने में असमर्थ हो गए। अकाल-पीड़ित प्रदेश से अधिकांश कौवे जंगल चले गए। वाराणसी वासी सविट्ठक नाम का एक कौआ अपनी कौवी को ले वीरक के निवासस्थान पर जा, उस तालाब के पास एक ओर रहने लगा।

एक दिन उसने उस तालाब में शिकार खोजते हुए वीरक को तालाब में

यह सुन वीरक ने 'हाँ, मैं जानता हूँ कि तेरा स्वामी कहाँ गया है' कह दूसरी गाथा कही—

> उदकथलचरस्स पक्खिनो निच्चं आमकमच्छभोजिनो,
> तस्सानुकरं सविट्ठको सेवाले पळिगुण्ठितो मतो ॥

[सविट्ठक जल और स्थल पर चलने वाले, नित्य कच्ची मछली खाने वाले, पक्षी की नक़ल करने जाकर काई में फँस कर मर गया।]

उदकथलचरस्स, जो जल और स्थल में चलने में समर्थ है। पक्खिनो, अपने सम्बन्ध में कहता है। तस्सानुकरं उसकी नक़ल करता हुआ। पळिगुण्ठितो मतो, पानी में घुस काई को छेद कर बाहर न निकल सकने के कारण काई में उलझ कर पानी के अन्दर ही मर गया। देख, उसकी चोंच दिखाई देती है।

इसे सुन कौवी रो पीट कर बाराणसी ही चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। तब सविट्ठक देवदत्त था। वीरक मैं ही था।

२०५. गङ्गेय्य जातक

"सोभति मच्छो गङ्गेय्यो ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय दो तरुण भिक्षुओं के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वे दो श्रावस्ती वासी कुलपुत्र बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो अशुभ-भावना में न लग रूप के प्रशंसक हो रूप की ही प्यार करते हुए घूमते थे। एक दिन उन

दोनों में रूप को लेकर विवाद उठ खड़ा हुआ। एक ने कहा—मैं शोभा देता हूँ। दूसरे ने कहा—तू नहीं शोभा देता; मैं शोभा देता हूँ। कुछ ही दूर पर एक वृद्ध स्थविर को बैठे देख उन्होंने सोचा—यह जानेंगे। हम में से कौन शोभनीय है, कौन नहीं? उन्होंने पास जाकर पूछा—हम में से कौन सुन्दर है? स्थविर ने उत्तर दिया—तुम दोनों से मैं ही सुन्दर हूँ।

तरुण भिक्षुओं ने कहा, यह बूढ़ा जो हम पूछते हैं वह न बता जो नहीं पूछते हैं वही कहता है। वे उसकी निन्दा कर चले गए।

उनकी यह करतूत भिक्षु-संघ में प्रकट हो गई। एक दिन धर्मसभा में बात-चीत चली—आयुष्मानो, वृद्ध स्थविर ने उन रूप-प्रिय तरुण भिक्षुओं को लज्जित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, इस समय बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? "यह बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ, यह दो तरुण केवल अभी रूप-प्रशंसक नहीं हैं; यह पहले भी रूप को ही प्यार करते हुए विचरते थे" कह शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व गङ्गा के किनारे वृक्ष-देवता थे। उस समय गङ्गा-यमुना के सङ्गम पर गङ्गेय्य और यामुनेय्य नाम की दो मछलियाँ थीं। वे आपस में विवाद करने लगीं—मैं शोभा देती हूँ, तू नहीं शोभती। इस प्रकार रूप के बारे में विवाद करते हुए उन्होंने थोड़ी दूर पर गङ्गा के किनारे पड़े एक कछुए को देखकर सोचा—यह जानेगा कि हम में कौन सुन्दर है? कौन असुन्दर? उसके पास जाकर उन्होंने पूछा—सौम्य! गङ्गेय्य सुन्दर है? अथवा यामुनेय्य?।

कछुए ने कहा—गङ्गेय्य भी सुन्दर है, यामुनेय्य भी सुन्दर है; लेकिन मैं तुम दोनों से अधिक सुदर हूँ।

इस बात को प्रकट करते हुए उसने पहली गाथा कही—

> सोभति मच्छो गङ्गेय्यो अथो सोभति यामुनो,
> चतुप्पदायं पुरिसो निग्रोधपरिमण्डलो;
> ईसकायतगीवो च सब्बेव अतिरोचति ॥

[गङ्गेय्य मछली शोभा देती है, यामुनेय्य भी शोभा देती है; लेकिन यह चार पैरों वाला, वड़-वृक्ष की तरह गोलाकार, गाड़ी की बल्ली की तरह लम्बी गर्दन वाला (पुरुष) सब से अधिक सुन्दर है।]

चतुप्पदायं, यह चतुष्पाद पुरिसो अपने बारे में कहता है। निग्रोध परिमण्डलो, अच्छी तरह उत्पन्न न्यग्रोध वृक्ष की तरह गोलाकार। ईसकायतगीवो रथ की धुड़ की तरह लम्बी बल्ली वाला। सब्बेव अतिरोचति इस प्रकार के आकार वाला कछुआ सबसे बढ़कर सुन्दर है, तुम दोनों से बढ़कर शोभा देता है।

मछलियों ने उसकी बात सुन 'अरे पापी कछुए! हमारी पूछी बात का उत्तर न दे, दूसरी ही कहता है' वह दूसरी गाथा कही—

> यं पुच्छितो न तं अक्खा अञ्ञं अक्खाति पुच्छितो,
> अत्तप्पसंसको पोसो नायं अस्माक रुच्चति ॥

[जो पूछा है वह नहीं कहता; पूछने पर दूसरी बात कहता है। यह अपनी ही प्रशंसा करने वाला पुरुष हमें अच्छा नहीं लगता।]

अत्तप्पसंसको, अपनी प्रशंसा करने वाला, अपनी बड़ाई करने वाला पुरुष। नायं अस्माक रुच्चति, यह पापी कछुआ हमें अच्छा नहीं लगता, रुचिकर नहीं है। वे कछुए के ऊपर पानी फेंक अपने निवासस्थान को गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय दो मछलियाँ तरुण भिक्षु थे। कछुआ बूढ़ा था। इस बात को प्रत्यक्ष करने वाला गङ्गा-तट पर पैदा हुआ वृक्ष-देवता मैं ही था।

२०६. कुरुङ्गमिग जातक

"इङ्घ वद्धमयं पासं..." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के सम्बन्ध में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय यह सुनकर कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है शास्ता ने कहा, 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध के लिए प्रयत्नशील है, उसने पहले भी कोशिश की है।' इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व कुरुङ्ग मृग की योनि में पैदा हो जंगल में एक तालाब के पास एक झाड़ी में रहता था। उसी तालाब के नजदीक वृक्ष पर एक कठफोड़ा[1] और तालाब में कछुआ रहता था। वे तीनों परस्पर प्रेम से रहते।

एक शिकारी जंगल में घूमते हुए पानी पीने के स्थान पर बोधिसत्त्व के पैरों का चिह्न देख लोहे की जंजीर सदृश चमड़े का जाल लगा कर गया।

बोधिसत्त्व पानी पीने आकर (रात्रि के) पहले पहर में ही फँस गए; तब फँस जाने की आवाज की। उसकी आवाज सुन वृक्ष-शाखा पर से कठफोड़ा और पानी में से कछुआ आया। उन्होंने सलाह की—क्या किया जाय? कठफोड़े ने कछुए को सम्बोधन कर कहा—मित्र! तेरे दाँत हैं। तू जाल को

---

[1] कठफोड़ा शतपत्र।

काट। मैं जाकर ऐसा करूँगा जिसमें वह आने न पाये। इस प्रकार हम दोनों के प्रयत्न से हमारे मित्र की जान बचेगी।

इस बात को प्रकट करते हुए यह गाथा कही—

> इङ्घ वद्धमयं पासं छिन्द दन्तेहि कच्छप
> अहं तथा करिस्सामि यथा नेहिति लुद्दको ॥

[हे कछुए! तू दाँतों से चमड़े के जाल को काट। मैं वैसा करूँगा जिससे शिकारी आने न पाये।]

कछुए ने चमड़े की डोरी काटनी शुरू की। कठफोड़ा शिकारी के घर गया। शिकारी प्रातःकाल ही शक्ति लेकर निकला। पक्षी ने यह जान कि वह घर से निकल रहा है आवाज कर, पंखों को फड़फड़ा कर आगे के द्वार से निकलते हुए उसके मुँह पर चोट की। शिकारी ने सोचा—मनहूस पक्षी ने मुझ पर प्रहार किया।

वह लौटा, थोड़ी देर लेट फिर शक्ति लेकर उठा। 'पहले यह आगे के द्वार से निकला था अब पीछे के द्वार से निकलेगा' सोच पक्षी जाकर घर के पीछे जा बैठा। शिकारी ने भी यह सोचा—आगे के द्वार से निकलते समय मैंने मनहूस पक्षी देखा अब पिछले द्वार से निकलूँगा। वह पीछे के द्वार से निकला। पक्षी ने फिर जाकर आवाज करते मुँह पर चोट की। शिकारी ने कहा—फिर मुझ पर मनहूस पक्षी ने चोट की। यह मुझे निकलने नहीं देता। वह लौटा, अरुणोदय तक लेटा रहा, फिर अरुणोदय होने पर शक्ति लेकर निकला।

पक्षी ने जल्दी से जाकर बोधिसत्व को सूचना दी कि शिकारी आ रहा है। उस समय तक कछुए ने एक को छोड़ सब चमड़े की डोरियाँ काट डाली थीं। उसके दाँत गिरने वाले हो गये थे। मुँह [illegible] हो गया था। बोधिसत्व शिकारी को [illegible] उस डोरी को तोड़ कर वन में भागा। [illegible] बैठा। कछुआ दुर्बलता के कारण वहीं पड़ा रहा। [illegible]

बोधिसत्व [illegible] कि कछुआ पकड़ा गया। उसने [illegible]

२०७. अस्सक जातक

"अयमस्सकराजेन. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्य्या के प्रलोभन के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने उस भिक्षु से पूछा—क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"हाँ, सचमुच।"

"किसने उत्कण्ठित किया?"

"पूर्व-भार्य्या ने।"

शास्ता ने कहा—भिक्षु, उस स्त्री का तेरे प्रति स्नेह नहीं है। पहले भी तू उसके कारण महान् दुःख भोग चुका है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में काशी राष्ट्र के पोतली[1] नाम के नगर में अस्सक नामक राजा राज्य करता था। उसकी उब्बरी नाम की पटरानी थी। वह प्रिया थी, मनाप थी, सुन्दर थी, दर्शनीय थी और थी मानुषिक और दिव्य-वर्ण के बीच के वर्ण की। वह मर गई। उसकी मृत्यु से राजा शोकाभिभूत हुआ। उसे दुःख हुआ और वह दौर्मनस्य को प्राप्त हुआ। उसने रानी का शरीर द्रोणी में, तेल की कड़ाई में रखवा उसे अपनी चारपाई के नीचे रखवाया। फिर स्वयं बिना कुछ खाए पीए रोता पीटता हुआ चारपाई पर पड़ा रहा।

---

[1] 'पोतन' भी पाठ है।

काम नहीं किया। इसलिए वह इसी उद्यान में गोबर के कीड़े की योनि में पैदा हुई।"

"मै विश्वास नहीं करता।"

"तो तुझे दिखा कर उससे कहलवाता हूँ।"

"अच्छा, कहलवाएँ।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से ऐसा किया कि दो गोबर-पिण्ड लुढ़कते हुए राजा के सामने आएँ। वे चले आए। बोधिसत्व ने उसे दिखाते हुए कहा—महाराज! यह तेरी उब्बरी देवी तुझे छोड़ गोबर के कीड़े के पीछे पीछे आती है। उसे देखें।

"भन्ते! मैं विश्वास नहीं करता कि उब्बरी गोबर के कीड़े की योनि में जन्म ग्रहण करेगी।"

"महाराज! उससे कहलवाता हूँ।"

"भन्ते! कहलवाएँ।"

बोधिसत्व ने अपने प्रताप से उसे बुलवाते हुए पूछा—उब्बरी! उसने मानुषी वाणी में कहा—हाँ भन्ते! क्या?

"*पूर्व-जन्म में तेरा क्या नाम था?*"

"भन्ते! मैं अस्सक राजा की उब्बरी नाम की पटरानी थी।"

"इस समय तुझे अस्सक राजा प्रिय है वा गोबर का कीड़ा।"

"भन्ते! वह मेरा पूर्व-जन्म था, उस समय मैं उसके साथ इस बाग़ में रूप, शब्द, गन्ध, रस तथा स्पर्श का आनन्द लेती हुई विचरती थी। लेकिन अब जब से मेरा नया जन्म हुआ है, वह मेरा क्या लगता है? मैं अब अस्सक राजा को मार कर उसकी गर्दन के खून से अपने स्वामी गोबर के कीड़े के पैरों को धो सकती हूँ।"

यह कह परिषद के बीच में आदमियों की भाषा में उसने यह गाथाएँ कहीं—

अयमस्सकराजेन देसो विचरितो मया,
अनुकामयानुकामेन पियेन पतिना सह॥
नवेन सुखदुक्खेन पोराणं अपिधीयति,
तस्मा अस्सकरञ्ञाव कीटो पियतरो मम॥

२०८. संसुमार जातक

"अलमेतेहि अम्बेहि, . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय देवदत्त के वध करने के प्रयत्न के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त वध के लिए प्रयत्न करता है, कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त मेरे वध करने का प्रयत्न करता है, उसने पहले भी किया है, लेकिन त्रास मात्र भी पैदा नहीं कर सका।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व हिमालय प्रदेश में बन्दर की योनि में पैदा हुए। वह हाथी सदृश बल वाले, शक्ति-सम्पन्न, महान् शरीर धारी, अति सुन्दर थे। गङ्गा के मोड़ पर जंगल में रहते थे।

उस समय गङ्गा में एक मगरमच्छ रहता था। उसकी भार्य्या ने बोधिसत्व को देखा। उसके मन में उसका मांस खाने का दोहद उत्पन्न हुआ। उसने मगरमच्छ से कहा—स्वामी! इस कपिराज का कलेजा खाना चाहती हूँ।

"भद्रे! हम जल-चर, वह स्थल-चर, क्या हम उसे पकड़ सकेंगे?"

"जिस किसी भी तरह हो पकड़, यदि नहीं मिलेगा, मर जाऊँगी।"

"तो डर मत। एक उपाय है। मैं तुझे उसका कलेजा खिलाऊँगा।"

उसे आश्वासन दे मगरमच्छ, जिस समय बोधिसत्व गङ्गा का पानी पी गङ्गा-तट पर बैठा था, बोधिसत्व के पास गया और बोला—वानरराज!

यहाँ इन अस्वादिष्ट फलों को खाते हुए तू अभ्यस्त स्थान में ही चरता है ? गङ्गा-पार आम, कटहल के मधुर फलों की सीमा नहीं। क्या तुम्हें गङ्गा-पार जाकर फल-मूल नहीं खाने चाहिएँ ?

"मगरराज ! गङ्गा में पानी बहुत है। वह विस्तृत है। मैं उधर कैसे जाऊँ ?"

"यदि चले तो मैं तुझे अपनी पीठ पर चढ़ा कर ले जाऊँगा।"

उसने उसका विश्वास कर 'अच्छा' कह स्वीकार किया। 'तो आ मेरी पीठ पर चढ़' कहने पर चढ़ गया। मगरमच्छ थोड़ी दूर जा उसे डुबाने लगा। बोधिसत्व ने पूछा—दोस्त ! यह क्या ? मुझे पानी में डुबा रहा है।?

"मैं तुझे धर्म-भाव से नहीं ले जा रहा हूँ। मेरी भार्य्या के मन में तेरे कलेजे के लिए दोहद उत्पन्न हुआ है। मैं उसे तेरा कलेजा खिलाना चाहता हूँ।"

"दोस्त ! तूने कह दिया सो अच्छा किया। यदि हमारे पेट में कलेजा हो तो एक शाखा से दूसरी शाखा पर घूमते हुए चूर्ण-विचूर्ण हो जाए।"

"तो तुम कहाँ रखते हो ?"

बोधिसत्व ने पास ही पके फलों से लदा हुआ एक गूलर का पेड़ दिखाकर कहा—देख, हमारे कलेजे इस गूलर के पेड़ पर लटकते हैं।

"यदि मुझे कलेजा दे, तो मैं तुझे नहीं मारूँगा।"

"तो आ मुझे वहाँ ले चल। मैं तुझे वृक्ष पर लटका हुआ दूँगा।"

वह उसे लेकर वहाँ गया। बोधिसत्व ने उसकी पीठ पर से छलांग मार गूलर की शाखा पर बैठ कहा—सौम्य ! मूर्ख मगरमच्छ ! तूने यह मान लिया कि इन प्राणियों का कलेजा वृक्ष की शाखाओं पर होता है। तू मूर्ख है। मैंने तुझे ठगा है। तेरे फल-मूल तेरे ही पास रहें। तेरा शरीर ही बड़ा है। अक़ल नहीं है।

यह कह, इसी बात को प्रकट करते हुए यह गाथाएँ कहीं—

अलमेतेहि अम्बेहि जम्बूहि पनसेहि च,
यानि पारं समुद्दस्स वरं मय्हं उदुम्बरो ॥
महती वत ते बोन्दि न च पञ्ञा तदूपिका,
संसुमार वञ्चितो मेसि गच्छ दानि यथासुखं ॥

[यह जो तू समुद्र-पार आम, जामुन और कटहल बताता है, मुझे वह नहीं चाहिए। मुझे गूलर ही अच्छा है। तेरा शरीर बड़ा है; लेकिन तेरी प्रज्ञा उसके समान नहीं। मगरमच्छ ! तू मेरे द्वारा ठगा गया है। अब तू सुखपूर्वक जा।]

अलमेतेहि, जो तूने द्वीप में देखे, वह मुझे नहीं चाहिएँ। वरं मय्हं उदुम्बरो मुझे यह उदुम्बर वृक्ष ही अच्छा है। बोन्दि शरीर। तदूपिका, तेरी प्रज्ञा तेरे शरीर के अनुकूल नहीं है। गच्छदानि यथासुखं, अब सुखपूर्वक जा; मेरे (लिए) कलेजा नहीं है।

मगरमच्छ (युद्ध में) हज़ार हार जाने की तरह दुःखी, दौर्मनस्य को प्राप्त हो चिन्ता करता हुआ अपने निवास-स्थान को चला गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मगरमच्छ देवदत्त था। मगरमच्छी चिञ्चामाणविका। बन्दर तो मैं ही था।

२०९. कक्कर जातक

"दिट्ठा मया वने रुक्खा ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय धर्मसेनापति सारिपुत्र स्थविर के शिष्य तरुण भिक्षु के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह अपने शरीर की रक्षा करने में होशियार था। शरीर के लिए दुःखकर न होगा, इस डर से किसी अति-शीत या अति-उष्ण चीज़ का उपयोग न

ऐसा कह वह तीतर भाग कर दूसरी जगह चला गया। उसके भाग जाने के समय चिड़ीमार ने दूसरी गाथा कही—

पुराणकक्करो अयं भेत्वा पञ्जरमागतो,
कुसलो वाळपासानं अपक्कमति भासति ॥

[यह पुराना बटेर पिंजरा तोड़ कर चला आया। वाल के फंदे में होशियार परिहास करके चल देता है।]

कुसलो वाळपासानं, वाल के फंदे में होशियार अपने को न बांधने देकर अपक्कमति और भासति, बोलकर भाग जाता है। ऐसा कह चिड़ीमार जंगल में घूम जो मिला लेकर घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिकारी देवदत्त था। बटेर अपनी शरीर-रक्षा करने में होशियार तरुण भिक्षु। उस बात को प्रत्यक्ष देखने वाला वृक्ष-देवता तो मैं ही था।

२१०. कन्दगलक जातक

अम्भो कोनामयं रुक्खो, यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय सुगत का रंग-ढंग बनाने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

तब शास्ता ने यह सुन कि देवदत्त ने सुगत का रंग-ढंग बनाया कहा— भिक्षुओ! न केवल अभी देवदत्त मेरी नकल करके विनाश को प्राप्त हुआ, पहले भी प्राप्त हुआ है।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

केवल सिर ही फूटा चोंच भी टूट गई। वह वेदना से पीड़ित हो खदिर-वृक्ष को न जान सका कि यह खदिर-वृक्ष है, और इस गाथा से विलाप किया—

इसे सुन खदिरवनी ने दूसरी गाथा कही—

अचारि वतायं[1] वितुदं वनानि कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु,
अथासदा खदिरं जातसारं यत्थब्भिदा गरुळो उत्तमङ्गं ॥

[यह पक्षी सार-रहित काठ के वृक्षों वाले वनों को ठोंग मारता रहा। अब यह सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ; जहाँ पक्षी ने सिर तुड़वाया।]

अचारिवतायं, इसने आचरण किया। वितुदं वनानि सार रहित सेमर पारिभद्रक के वन आदि को ठोंग मारते हुए घूमते हुए। कट्ठङ्गरुक्खेसु असारकेसु, वन की सामान्य लकड़ी सार रहित पारिभद्रक सेमर आदि में। अथासदा खदिरं जातसारं, तदनन्तर सारवान् खदिर-वृक्ष को प्राप्त हुआ। यत्थब्भिदा, जिस खदिर-वृक्ष में लगकर तोड़ लिया फाड़ लिया गरुळो पक्षी। सभी पक्षियों के लिए आदर का शब्द है।

खदिरवनी ने उसे यह सुना कर कहा—कन्दगलक! जहाँ तूने सिर तुड़वाया यह खदिर नाम का सारवान् वृक्ष है। वह वहीं मर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना सुना जातक का मेल बैठाया।

उस समय कन्दगलक देवदत्त था। खदिरवनी तो मैं ही था।

---

[1] अचारित्वयं भी पाठ है।

राजा से एक बैल माँग। "तात! राजा की सेवा में रहते थोड़े ही दिन हुए हैं। अभी बैल माँगना ठीक नहीं। आप ही माँगें।"

"तात! तू मेरे अधिक लज्जाशील होने को नहीं जानता? मैं दो तीन जनों के सामने बोल नहीं सकता। यदि मैं राजा के पास बैल माँगने जाऊँगा; तो यह भी देकर आऊँगा।"

"तात! जो होना है सो हो। मैं राजा से नहीं माँग सकता। लेकिन मैं तुम्हें बोलने का अभ्यास करा दूँगा।"

"तो अच्छा, मुझे अभ्यास करा।"

बोधिसत्त्व उसे ऐसे श्मशान में ले गए, जहाँ बीरण-घास के झुंड थे। वहाँ घास के पूले बाँधकर 'यह राजा है', 'यह उपराजा है', 'यह सेनापति है' नाम रख, क्रम से पिता को दिखा कर कहा—"तात! तू राजा के पास जा 'महाराज की जय हो' कह, इस तरह यह गाथा कह बैल माँगना। गाथा सिखाई—

> द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे,
> तेसु एको मतो देव दुतियं देहि खत्तिय॥

[महाराज! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव! उनमें से एक मर गया। राजन! दूसरा दें।]

ब्राह्मण ने एक वर्ष में गाथा का अभ्यास कर बोधिसत्त्व को कहा—तात! सोमदत्त! मुझे गाथा (कहने) का अभ्यास हो गया। अब मैं इसे जिस किसी के सामने कह सकता हूँ। मुझे राजा के पास ले चल।

उसने कहा 'तात अच्छा' और योग्य भेंट लिवा पिता को राजा के पास ले गया। ब्राह्मण ने 'महराज की जय हो' कह भेंट दी। राजा ने पूछा—

'सोमदत्त! यह ब्राह्मण तेरा क्या लगता है?'

"महाराज! मेरा पिता है।"

"किस मतलब से आया है?"

उस समय ब्राह्मण ने बैल माँगने के लिए गाथा कहते हुए कहा—

> द्वे मे गोणा महाराज येहि खेत्तं कसामसे,
> तेसु एको मतो देव दुतियं गण्ह खत्तिय॥

[महाराज ! मेरे दो बैल थे, जिनसे खेती होती थी। देव ! उनमें से एक मर गया। राजन् ! दूसरा लें।]

राजा ब्राह्मण से विमुख हो गया। उसके कहने का भाव जान मुस्कराया और बोला—सोमदत्त ! तुम्हारे घर में मालूम होता है बहुत बैल हैं।

"महाराज ! आप देंगे तो हो जाएँगे।"

राजा ने बोधिसत्त्व पर प्रसन्न हो ब्राह्मण को सोलह अलङ्कृत बैल और उसका रहने का गाँव ब्रह्मदान दे, बहुत से धन के साथ विदा किया।

ब्राह्मण सर्व श्वेत सैन्धव घोड़े जुते रथ पर चढ़ बहुत से अनुयायियों के साथ गाँव आया। बोधिसत्त्व ने रथ में बैठ, पिता के साथ आते हुए कहा—तात ! मैंने सारा साल तुम्हें अभ्यास कराया; लेकिन अन्त में तुमने अपना बैल राजा को दिया।

इतना कह यह गाथा कही—

> अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो
> संवच्छरं बीरणत्थम्भकस्मि,
> व्याकासि सञ्ञं परिसं विगय्ह
> न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञं ॥

[आलस्य रहित हो नित्य साल भर तक बीरण-घास के झुंडों वाले श्मशान में अभ्यास किया; लेकिन परिषद में जाकर भूल गया। अल्प-प्रज्ञ आदमी का अभ्यास भी त्राण नहीं करता।]

अकासि योग्गं धुवमप्पमत्तो संवच्छरं बीरणत्थम्भकस्मि, तू नित्य प्रमादरहित हो बीरण के झुंड वाले श्मशान में वर्ष भर अभ्यास करता रहा। **व्याकासि सञ्ञं परिसं विगय्ह**, परिषद में आकर उस सञ्ज्ञा को विकृत कर दिया; मतलब बदल दिया। **न निय्यमो तायति अप्पपञ्ञं**, अल्प प्रज्ञा वाले आदमी का नियम, अभ्यास त्राण नहीं करता; रक्षा नहीं करता।

उसकी बात सुन ब्राह्मण ने दूसरी गाथा कही—

इदं याचनको तात सोमदत्त निगच्छति
अलाभं धनलाभञ्च एवंधम्मा हि याचना ॥

[तात सोमदत्त ! माँगने वाले की दो ही हालतें होती हैं—धन मिलना है या नहीं मिलना। माँगने का यह स्वभाव ही है।]

एवंधम्मा हि याचना; माँगने का यही स्वभाव है।

शास्ता ने "भिक्षुओ-लालुदायी केवल अभी अधिक लज्जाशील नहीं है, पहले भी अधिक लज्जाशील ही था" कह यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय सोमदत्त का पिता लालुदायी था। सोमदत्त मैं ही था।

२१२. उच्छिट्ठभत्त जातक

"अञ्ञो उपरिमो वण्णो···" यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व भार्या की आसक्ति के बारे में कही—

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने पूछा—भिक्षु, क्या तू सचमुच उत्कण्ठित है?

"सचमुच"

"तुझे किसने उत्कण्ठित किया?"

"पूर्व भार्या ने।"

"भिक्षु ! यह स्त्री तेरा अनर्थ करने वाली है। पहले भी इसने मुझे जार जन का जूठा खिलाया है।"

ऊपर ठंडा और नीचे गरम होना चाहिए। यह वैसा नहीं है। इसलिए तुझे पूछता हूँ। किस कारण से ऊपर का भात गरम और नीचे का ठंडा है?

ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट हो जाने के भय से ब्राह्मण के बार बार कहने पर भी चुप ही रही। उस समय बोधिसत्त्व को यह सूझा कि कोठे में बिठाया हुआ आदमी जार होगा और यह घर का स्वामी। ब्राह्मणी अपनी करतूत के प्रकट होने के भय से कुछ नहीं बोलती। हन्त ! मैं इसकी करतूत प्रकट कर जार के कोठे में बिठाए होने की बात कह दूँ।

उसने ब्राह्मण के घर से निकलने से जार के घर में प्रवेश करने, अनाचार करने, श्रेष्ठ भात खाने, ब्राह्मणी का दरवाजे पर खड़े हो रास्ता देखने और जार को कोठे में उतारने तक का सब हाल कह दूसरी गाथा कही—

अहं नटोस्मि भद्दन्ते भिक्खकोस्मि इधागतो,
अयं हि कोट्ठमोतिण्णो अयं सो यं गवेसमि ॥

[स्वामी ! मैं नट हूँ। भीख माँगने के लिए यहाँ आया हूँ। यह है कोठे में उतरा हुआ और यह ही है जिसे तू खोजता है।]

अहं नटोस्मि भद्दन्ते, स्वामी ! मैं नट जाति का हूँ। भिक्खकोस्मि इधागतो मैं भिखमगा यहाँ भीख माँगता हुआ आया हूँ। अयं हि कोट्ठमोतिण्णो यह इसका जार इस भात को खाता हुआ तेरे भय से कोठे में उतरा है। अयं सो यं गवेससि, जिसे तू खोज रहा है कि यह किसका जूठा भात होगा, वह यही है। 'इसे बालों से पकड़, कोठे से निकाल ऐसा कर जिसमें इसे होश रहे और फिर यह ऐसा पाप-कर्म न करे' कह चला गया।

ब्राह्मण उन दोनों को डरा, डाँट कर ऐसी शिक्षा दे जिसमें वे फिर ऐसा पाप-कर्म न करें कर्मानुसार गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय ब्राह्मणी पूर्व-भार्या थी। ब्राह्मण उत्कण्ठित। नट-पुत्र मैं ही था।

करने वाला कोई नहीं है। इसलिए राजा को रिश्वत दे आश्रम के लिए जगह लेंगे।

यह सलाह कर उपस्थापकों से मांग राजा को लाख दे कहा—महाराज! हम जेतवन में तैर्थिक-आश्रम बनाएँगे। यदि भिक्षु तुम्हें कहें कि हम बनाने नहीं देंगे तो उनकी बात स्वीकार न करना।

राजा ने रिश्वत के लोभ से 'अच्छा' कह स्वीकार किया। तैर्थिकों ने राजा को मिला बढ़इयों को बुलवा काम शुरू किया। बड़ा शोर हुआ। शास्ता ने पूछा—आनन्द! यह हल्ला करने वाले, शोर मचाने वाले कौन हैं?

'भन्ते! अन्य तैर्थिक जेतवन में तैर्थिक-आश्रम बनवा रहे हैं। वहीं यह शोर हो रहा है।"

"आनन्द! यह स्थान तैर्थिकों के योग्य नहीं है। तैर्थिक शोर-प्रिय होते हैं। उनके साथ रहना नहीं हो सकता।"

शास्ता ने भिक्षु-संघ को एकत्र कर कहा—भिक्षुओ, जाओ राजा को कह कर तैर्थिक-आश्रम का बनवाना रुकवाओ।

भिक्षु जाकर राजा के प्रवेशद्वार पर खड़े हुए। राजा ने यह सुना कि भिक्षु आए हैं तो यह समझ कर कि तैर्थिकों के आश्रम के ही बारे में आए होंगे रिश्वत लिए रहने के कारण कहलवा दिया कि राजा घर में नहीं है। भिक्षुओं ने जाकर शास्ता से कहा। शास्ता ने 'रिश्वत के कारण ऐसा करता है' सोच दोनों प्रधान शिष्यों को भेजा। राजा ने उनका भी आना सुन वैसे ही कहलवा दिया। उन्होंने भी आकर शास्ता से कहा।

'सारिपुत्र! अब राजा को घर में बैठना न मिलेगा, बाहर निकलना ही होगा' कह शास्ता अगले दिन पूर्वाह्न समय पहन कर, पात्र चीवर ले पाँच सौ भिक्षुओं के साथ राजा के प्रवेशद्वार पर पहुँचे। राजा ने सुना तो वह महल से उतर पात्र ले शास्ता को (अन्दर) लिवा भिक्षुसंघ को, जिसमें मुख्य बुद्ध थे यवागू-खाद्य दे शास्ता को प्रणाम कर एक ओर बैठा। शास्ता ने राजा को एक तरह का धर्मोपदेश करते हुए कहा—महाराज! पुराने राजाओं ने रिश्वत ले शीलवानों में परस्पर झगड़ा कराया। वे अपने देश के स्वामी नहीं रहे और महान विनाश को प्राप्त हुए।

उसके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

राजा ने वैसा ही किया।

ऋषियों ने सोचा कि हम काम-भोगों को छोड़ प्रव्रजित हुए। फिर वृक्ष के नीचे की जगह के लिए झगड़ते हुए रिश्वत देने लगे। हमने यह अनुचित किया। इस प्रकार पश्चात्ताप कर वे जल्दी से भाग कर हिमालय ही चले गए।

सकल भरु राष्ट्रवासी देवताओं ने एकत्र हो कर कहा—राजा ने शीलवानों में झगड़ा पैदा करके अच्छा नहीं किया। उन्होंने क्रोधित हो तीन सौ योजन के भरु राष्ट्र को समुद्र में तूफान लाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार एक भरु राजाओं के कारण सारा राष्ट्र विनाश को प्राप्त हुआ (१६) शास्ता ने यह पूर्व-जन्म की कथा ला अभिसम्बुद्ध होने पर यह गाथाएँ कहीं—

> इसीनमन्तरं कत्वा भरुराजाति मे सुतं,
> उच्छिन्नो सहरट्ठेन स राजा विभवं गतो ॥
> तस्मा हि छन्दागमनं नप्पसंसन्ति पण्डिता,
> अदुट्ठचित्तो भासेय्य गिरं सच्चूपसंहितं ॥

[ऐसा मैंने सुना कि ऋषियों में भेद करके भरु राजा अपने राष्ट्र सहित विनाश को प्राप्त हुआ। इसलिए पण्डित लोग पक्षपात की प्रशंसा नहीं करते। द्वेषरहित चित्त से सच्ची बात कह देनी चाहिए।]

अन्तरं कत्वा, पक्षपात के कारण भेद करके। भरु राजा भरु राष्ट्र का राजा। इति मे सुतं ऐसा मैंने पहले सुना। तस्मा हि छन्दागमनं, क्योंकि पक्षपात करके भरु राजा राष्ट्र सहित नष्ट हुआ इसलिए पण्डित पक्षपात की प्रशंसा नहीं करते। अदुट्ठचित्तो, विकारों से मलिन चित्त न हो। भासेय्य गिरं सच्चूपसंहितं यथार्थ, अर्थयुक्त, सकारण वाणी ही बोले।

जिन्होंने भरु राजा के रिश्वत लेते समय 'यह उचित नहीं है' कह निन्दा करते हुए सच्ची बात कही, वे जहाँ खड़े थे वहाँ नारिकेल के द्वीप में आज भी हजारों दीपक (जलते) दिखाई देते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला 'महाराज, पक्षपात नहीं करना चाहिए, प्रव्रजितों में झगड़ा नहीं कराना चाहिए' कह जातक का मेल बैठाया।

सत्त्व के गुणों की याद आई। उसने सोचा कि किसीको भेजकर मेरे लिए आचार्य्य को बुलाना ठीक नहीं। एक गाथा रच, पत्र लिख, कौवे का मांस पकवा, सफेद वस्त्र से लपेट, राजकीय मोहर लगाकर भेजूँगा। यदि पण्डित होगा, पत्र पढ़ कर कौवे के मांस का भाव समझ कर चला आएगा। नहीं, तो नहीं आएगा। उसने यह गाथा पत्र में लिखी—

पुण्णं नदिं येन च पेय्यमाहु,
जातं यवं येन च गुय्हमाहु ॥
दूरं गतं येन च अव्हयन्ति,
सो त्यागतो हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण ॥

[जिसके पीने योग्य होने से नदी पूर्ण समझी जाती है, जिसको छिपा सकने योग्य होने से जौ उत्पन्न हुए समझे जाते हैं; जिसके बोलने से दूर गए आने वाले समझे जाते हैं; वह तेरे लिए आया है। ब्राह्मण ! इसे खा।]

पुण्णं नदिं येन च पेय्यमाहु, 'काकपेय्य नदी' कहते हुए पूर्ण नदी को ही पेय्य कहते हैं। अपूर्ण नदी काकपेय्य नदी नहीं कहलाती; जब नदी किनारे खड़े हो गरदन पसार कर कौआ पी सकता है, तभी उसे काकपेय्य कहते हैं। जातं यवं येन च गुय्हमाहु, जौ शीर्षक मात्र है। यहाँ सभी पैदा हुई, उत्पन्न हुई, तरुण खेती से मतलब है। वह जब अन्दर दाखिल हुए कौवे को छिपा सकती है तभी गोपन करने वाली होने से गुय्ह कहलाती है। किसे छिपाती है ? कौवे को। इस प्रकार कौवे को छिपाने से काक-गुय्ह। काक-गुय्ह कहने वाले (लोग) गुह्य-वचन का कारण कौवा होता है इसलिए काक-गुय्ह कहते हैं। इसीलिए कहा है—येन च गुह्यमाहु। दूरं गतं येन च अव्हयन्ति दूर गया हुआ प्रवासी प्रिय जन होने पर, जिसके आकर बैठने पर (लोग) कहते हैं कि यदि अमुक नाम का व्यक्ति आने वाला है तो कौवे बोल अथवा जिसके बोलने पर लोग समझते हैं क्योंकि कौवा बोलता है, इसलिए अमुक नाम का व्यक्ति आएगा, इस तरह कहने वाले जिसके कारण कहते हैं, विचार करते हैं, व्यक्त करते हैं। सो त्यागतो वह तेरे लिए लाया गया है। हन्द च भुञ्ज ब्राह्मण, ब्राह्मण ग्रहण कर, खा। मतलब इस कौवे के मांस को खा।

क. वर्तमान कथा

यह कथा महातक्कारि¹ जातक में आएगी। उस समय शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, कोकालिक केवल अभी अपनी वाणी से नहीं मारा गया, पहले भी मारा गया। यह कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उसके अर्थधर्मानुशासक हुए। वह राजा बहुत बोलने वाला था। वह बोलता तो दूसरों को बोलने का मौका न मिलता। बोधिसत्व उसकी वाचालता हटाने का कोई उपाय सोचते हुए घूमते थे।

उस समय हिमालय-प्रदेश के किसी तालाब में एक कछुआ रहता था। दो हंस-बच्चों ने शिकार के लिए घूमते हुए उससे दोस्ती कर ली। उसके प्रति दृढ़-विश्वासी हो एक दिन हंस-बच्चों ने कछुवे से कहा—दोस्त कछुवे! हमारे हिमवन्त में चित्रकूट पर्वत के नीचे कञ्चन गुफा में रहने का रमणीक स्थान है। हमारे साथ चलेगा?

"मैं कैसे चलूँगा?"

"हम तुझे लेकर चलेंगे; यदि तू अपने मुँह पर काबू रख सकेगा, किसी को कुछ न कहेगा।"

"स्वामी! काबू रखूँगा। मुझे लेकर चलें।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। एक लकड़ी को कछुवे के मुँह में दे, उसके दोनों सिरों को अपने मुंह में ले वे आकाश में उड़े। उसे इस प्रकार हंसों द्वारा लिए जाते देख गाँव के लड़कों ने कहा—दो हंस कछुवे को डंडे पर लिए जाते हैं।

हंसों की गति तेज होने के कारण वे वाराणसी नगर के राजमहल के ऊपर आ पहुँचे थे। कछुवे ने "दुष्ट चेटको! यदि मेरे मित्र मुझे ले जाते हैं

---

¹ महातक्कारि जातक (४८१)

एतम्पि दिस्वा यह बात भी देखकर नरविरिय सेट्ठ नरों में श्रेष्ठ-वीर्य ! उत्तमवीर्य्य राजवर ! वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं सत्यादि से युक्त कुशल वाणी ही पण्डित आदमी बोले; वह भी हितकर समयानुकूल। समय (की सीमा) लाँघ कर असीम वाणी न बोले। पस्ससि प्रत्यक्ष देखता है बहुभाणेन अधिक बोलने से कच्छपं व्यसनं गतं, यह कछुआ मर गया।

राजा ने 'मेरे लिए वह रहा है' सोच पूछा—पण्डित ! मेरे बारे में कह रहा है ?

बोधिसत्व—महाराज ! चाहे आप हों, चाहे कोई और हो; जो कोई सीमा लाँघ कर बोलता है वह इसी प्रकार दुःख भोगता है। यह स्पष्ट करके कहा।

उस समय से राजा संयम कर मितभाषी हो गया। शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया।

उस समय कछुआ कोकालिक था। दो हंस-बच्चे दो महास्थविर। राजा आनन्द। अमात्य पण्डित तो मैं ही था।

२१६. मच्छ जातक[1]

"न मायमग्गि तपति..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय पूर्व-भार्या के आकर्षण के बारे में कही।

---

[1] देखो मच्छ जातक (१. ४. ३४)

सो मं डहति, जो यह रागाग्नि है वह मुझे जलाती है। चित्तं तापेति मं, रागयुक्त मेरा चित्त ही मुझे तपाता है, कष्ट देता है, पीड़ा देता है। आग्गिको कोसको (मछुओ) को सम्बोधन करता है। वह आग के धर्मी होने से आग्गिको कहलाते हैं। मुञ्चथयिरा मं, स्वामी मुझे छोड़ दें, यही याचना करता है। न कामे हञ्ञते क्वचि, काम में प्रतिष्ठित, काम में बहता हुआ प्राणी कहीं नहीं मारा जाता, तुम्हारे जैसों को उसे मारना योग्य नहीं। अथवा कामे हेतु के अर्थ में सप्तमी का प्रयोग है। काम-हेतु से मछली के पीछे पीछे घूमने वाला कहीं भी तुम्हारे जैसों से नहीं मारा जाता।

उसी समय बोधिसत्व ने नदी किनारे जा उस मच्छ का रोना सुन, मछुओं के पास पहुँच उस मच्छ को छुड़ाया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर उत्कण्ठित भिक्षु स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय मछली पूर्व-भार्या थी। उत्कण्ठित भिक्षु मच्छ था। पुरोहित मैं ही था।

२१७. सेग्गु जातक

"सब्बो लोको ..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक साग-भाजी बेचने वाले उपासक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कथा पहले परिच्छेद में आ ही चुकी है।[1] इस कथा में शास्ता[ने] पूछा—उपासक! क्यों देर करके आया है?

"भन्ते! मेरी लड़की सर्वदा हँसमुख रहती थी। मैंने उसकी परीक्षा कर उसे एक वंश को दिया।" सो यह करने से आपके दर्शन के लिए आने का समय नहीं मिला।"

"उपासक! वह अब ही सदाचारिणी नहीं है। पहले भी सदाचारिणी थी। तूने न केवल अभी उसकी परीक्षा की है, पहले भी की ही थी।"

इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व वृक्ष-देवता हुए। उस समय उसी तरकारी बेचने वाले उपासक ने लड़की की परीक्षा करने के लिए उसे जंगल में ले जा काम-भोग चाहने वाले की तरह उसे हाथ से पकड़ा। वह रोने लगी। उसे यह पहली गाथा कही—

सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि,
अकोविदा गामधम्मस्स सेट्ठु ॥
कोमारि कोनाम तवज्ज धम्मो,
यं त्वं गहिता वने परोदसि ॥

[सारा लोक (इससे) आनन्दित (होता) है। सेट्ठु तू इस ग्राम्य-धर्म [से अ]परिचित है। कुमारी! यह तेरा क्या धर्म है कि तू वन में पकड़ने पर [रोती] है।]

[...] सब्बो लोको अत्तमनो अहोसि, अन्न! सारे प्राणी इस काम-भोग के

[...]क जातक (१०२)

सेवन से सन्तुष्ट (होते) हैं। अयं पिसो गामधम्मस्स सेग्गु, सेग्गु, उसका नाम है। सो त्वम्म सेग्गु ! तू इस ग्राम्य-धर्म में, इस चाण्डाल-कर्म में दक्ष नहीं है। कोमारि को नाम तवज्ज धम्मो, अम्म कुमारी ! यह आज तेरा क्या स्वभाव है ? यं त्वं गहिता वने परोदसि, जो तू मेरे द्वारा इस वन में कामभोग के लिए पकड़ी जाने पर रोती है। स्वीकार नहीं करती। यह तेरा क्या स्वभाव है ? क्या तू कुमारी ही है ?—पूछता है।

इसे सुन कुमारी ने कहा—हाँ तात ! मैं कुमारी ही हूँ। मैं मैथुन धर्म को नहीं जानती हूँ। ऐसा कह, रोती हुई दूसरी गाथा बोली—

> यो दुक्खफुट्ठाय भवेय्य ताणं,
> सो मे पिता दुब्भि वने करोति ॥
> सा कस्स कन्दामि वनस्स मज्झे,
> यो तायिता सो सहसा करोति ॥

अर्थ उपरोक्त प्रकार[1] से ही है।

तब वह तरकारी बेचने वाला उस लड़की की परीक्षा कर, घर ले जा, तरुण को दे यथा-धर्म विदा किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला सत्यों का प्रकाशन कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों का प्रकाशन समाप्त होने पर तरकारी बेचने वाला स्रोतापत्ति फल में प्रतिष्ठित हुआ।

उस समय लड़की (अब की) लड़की ही थी। पिता पिता ही हुआ। इस बात को प्रत्यक्ष करने वाला वृक्ष-देवता मैं ही था।

---

[1] पण्णिक जातक (१०२)

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करते समय बोधिसत्व अमात्य-कुल में पैदा हो, बड़े होने पर उस राजा के विनिश्चय-अमात्य[1] हुए।

उस समय एक ग्राम-वासी तथा एक नगर-वासी दो बनियों की आपस में मित्रता थी। ग्रामवासी ने नगरवासी के पास पाँच सौ फाल रक्खे। उसने उन फालों को बेच, कीमत ले, जिस जगह पर फाल रक्खे थे वहाँ चूहों की मेंगनें फैला दीं। समय बीतने पर ग्रामवासी ने आकर कहा—मेरे फाल दे। कुटिल बनिए ने चूहे की मेंगने दिखाकर कहा कि तेरे फालों को चूहे खा गए।

दूसरे ने 'अच्छा खाए गए सो खाए गए, चूहों के खा लेने पर क्या किया जा सकता है' वह नहाने के लिए जाते समय उसके पुत्र को साथ ले जा एक मित्र के घर में बिठा कर कहा—इसे कहीं न जाने दें। फिर स्वयं नहा कर कुटिल बनिए के घर गया।

उसने पूछा—मेरा पुत्र कहाँ है?

मैं तेरे पुत्र को किनारे बैठा कर पानी में डुबकी लगा रहा था। एक चिड़िया आई और तेरे पुत्र को पञ्जों में ले आकाश में उड़ गई। मैंने हाथ पीट चिल्लाया, कोशिश की—लेकिन तब भी उसे न छुड़ा सका।"

'तू झूठ बोलता है। चिड़िया बच्चों को लेकर नहीं जा सकती।"

'मित्र, हो, असम्भव होने पर भी मैं क्या करूँ? तेरे पुत्र को चिड़िया ही ले गई है।'

उसने उसको भी कहा—अरे मनुष्यघातक, दुष्ट, चोर! अभी अदालत में जाकर शिकायत करता हूँ। यह कह वह चला। 'जो तुझे अच्छा लगे कर' कहते हुए वह भी उसके साथ अदालत गया। कुटिल व्यापारी ने बोधिसत्व से कहा—स्वामी! यह मेरे पुत्र को लेकर नहाने गया। अब 'मेरा पुत्र कहाँ है?' पूछने पर कहता है कि उसे चिड़िया ले गयी। इस मुकद्दमे का फैसला करें।

---

[1] मुकद्दमों का फैसला करने वाला अमात्य।

वानरों ने जब सुना कि बोधिसत्व आया है, तो उसे देखने के लिए महान् शिला-तल पर इकट्ठे हुए। उन्होंने बोधिसत्व से कुशल-समाचार की बात कर पूछा—"मित्र, इतने दिन तक कहाँ रहे?"

"वाराणसी में, राजभवन में।"

"कैसे छूटे?"

"राजा ने मुझे खेल करने वाला बन्दर बना, मेरे करतबों से प्रसन्न हो मुझे छोड़ दिया।"

"आप मनुष्य लोकों का बरताव जानते हैं। हमें भी कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

"मनुष्यों की करनी मुझसे मत पूछो।"

"कहें। हम सुनना चाहते हैं।"

बोधिसत्व ने, "मनुष्य चाहे क्षत्रिय हों, चाहे ब्राह्मण हों, सभी मेरा मेरा करते हैं। वस्तुएँ अस्तित्व में आकर विनष्ट हो जाती हैं, इस अनित्यता को वे नहीं जानते। अब उन अन्धे मूर्खों की बात सुनो" कह यह गाथाएँ कहीं—

> हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे एसा रत्तिन्दिवा कथा,
> दुम्मेधानं मनुस्सानं अरियधम्मं अपस्सतं ॥
> द्वे द्वे गहपतयो गेहे एको तत्थ अमस्सुको,
> लम्बत्थनो वेणिकतो अथो अंकितकण्णको;
> कीतो धनेन बहुना सो तं वितुदते जनं ॥

[आर्यधर्म को न जानने वाले मूर्ख मनुष्य दिन रात यही बातचीत करते रहते हैं—मेरा हिरण्य, मेरा सोना।

घर में दो दो जने रहते हैं। एक को मूछ नहीं होती। उसके लम्बे स्तन होते हैं, वेणि होती है और कानों में छेद होते हैं। उसे बहुत धन से खरीदा होता है। वह सब जनों को कष्ट देता है।]

हिरञ्ञम्मे सुवण्णम्मे, यह शीर्षकमात्र है। इन दो पदों से दसों तरह के रत्न, अगर्भी-पिछनी कमण, सब द्विपद तथा चतुष्पदों का ग्रहण कर 'यह मेरा यह मेरा' कहा गया है। एसा रत्तिन्दिवा कथा, मनुष्य-लोग रात दिन यही

२२०. धम्मद्ध जातक

"पुन्न कोविलपरोति,...." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय वध का प्रयत्न करने के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

शास्ता ने 'भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने मेरे वध के लिए प्रयत्न किया है, पहले भी किया है; लेकिन त्रासमात्र भी पैदा नहीं कर सका' कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में पायासपाणी नामका राजा राज्य करता था। काळक नाम का उसका सेनापति था। उस समय बोधिसत्त्व उसीके पुरोहित थे। नाम था धम्मध्वज। राजा के सिर को अलङ्कृत करने वाले नाई का नाम था छत्तपाणी।

राजा धर्म-पूर्वक राज्य करता था, लेकिन उसका सेनापति मुकद्दमों का फैसला करता हुआ रिश्वत खाता था। चुगल-खोर रिश्वत लेकर स्वामी को अस्वामी कर देता था।

एक दिन मुकद्दमे में हारे हुए आदमी ने बाहें पकड़ कर रोते हुए, अदालत से निकल राज-सेवा में जाते हुए बोधिसत्त्व को देखा। उसने उसके पाँव में गिरकर कहा—स्वामी ! तुम्हारे सदृश राजा के अर्थधर्मानुशासक के होते हुए काळक सेनापति रिश्वत लेकर अस्वामी को स्वामी बना देता है, और अपने मुकद्दमे हारने की बात कही।

बोधिसत्त्व प्रातःकाल का भोजन कर राजद्वार गया। वहाँ छत्तपाणी को देख हाथ से पकड़ पूछा—मित्र, क्या तू चारों अङ्गों से युक्त है ?

"तुझे किसने कहा है कि मैं चारों अङ्गों से युक्त हूँ ?"

"देवराज शक्र ने।"

"किस कारण से कहा।"

"इस कारण से" कह सब कहा। वह बोला—हाँ, मैं चारों अङ्गों से युक्त हूँ।

बोधिसत्त्व उसे हाथ से पकड़े ही पकड़े राजा के पास ले जाकर बोला—महाराज, यह छत्तपाणी चारों अङ्गों से युक्त है। उद्यानपाल की आवश्यकता होने पर इसे उद्यानपाल बनायें।

राजा ने उसे पूछा—क्या तू चारों अङ्गों से युक्त है ? हाँ महाराज। "किन चारों अङ्गों से ?" उत्तर दिया—

> अनुसुय्यको अहं देव अमज्जपायको अहं,
> निस्नेहको अहं देव अक्कोधनं अधिट्ठितो॥

महाराज ! मुझ में ईर्ष्या नहीं है। मैंने कभी शराब नहीं पी है। देव ! मुझ में दूसरों के प्रति न स्नेह है, न क्रोध है। मैं इन चारों अङ्गों से युक्त हूँ।

राजा ने पूछा—छत्तपाणी ! तू अपने आपको ईर्ष्या-रहित कहता है ?

—हाँ देव ! मैं ईर्ष्या-रहित हूँ।

"किस बात को देखकर ईर्ष्या-रहित हुआ ?"

'देव ! सुनें' कह अपने ईर्ष्या-रहित होने का कारण बताते हुए यह गाथा कही—

> इत्थिया कारणा राज बन्धापेसिं पुरोहितं,
> सो मं अत्थे निवेसेसि तस्माहं अनुसुय्यको॥

[राजन ! स्त्री के कारण मैंने पुरोहित को बँधवाया। उसने मुझे अर्थ में लगाया। इसलिए मैं ईर्ष्या-रहित हूँ।]

इसका अर्थ है कि देव ! मैं पहले इसी वाराणसी नगर में तुम्हारे जैसा ही राजा था। मैंने स्त्री के लिए पुरोहित को बँधवाया।

महाराज ! पूर्वकाल में मैं तुम्हारी ही तरह बाराणसी का राजा था। शराब के बिना न रह सकता था। बिना मांस का भोजन न खा सकता था। नगर में उपोसथ के दिनों में पशु-हत्या बन्द रहती। रसोइये ने पक्ष की अष्टमी को ही मांस लेकर रख दिया। सँभाल कर रखा न होने से उसे कुत्ते खा गए। रसोइये ने उपोसथ के दिन मांस न पा, राजा के लिए नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बना प्रासाद पर चढ़ राजा के पास भोजन न ले जा सकने के कारण देवी के पास जाकर पूछा—देवी ! आज मुझे मांस नहीं मिला। बिना मांस का भोजन राजा के पास नहीं ले जा सकता। क्या करूँ ?

"तात ! मेरा पुत्र राजा को अत्यन्त प्रिय है। पुत्र को देख कर राजा उसे चूमता हुआ, लाड़-प्यार करता हुआ अपना अस्तित्व भी भूल जाता है। मैं पुत्र को सजाकर राजा की गोदी में बिठा दूँगी। उसके पुत्र के साथ खेलते समय तू भोजन लाना।"

ऐसा कह उसने अपने पुत्र सुन्दर बालक को सजाकर राजा की गोद में बैठाया। राजा के पुत्र के साथ खेलते समय रसोइया भोजन लाया। शराब के नशे में बेहोश राजा ने पका हुआ मांस न पा पूछा—मांस कहाँ है ? देव ! आज दिन पशु-हत्या बन्द रहने से मांस नहीं मिला।' राजा ने 'मुझे मांस नहीं मिलेगा' कह गोद में बैठे प्रिय पुत्र की गर्दन मरोड़, जान से मार रसोइये के सामने फेंका और आज्ञा दी—जल्दी से पका कर ला। रसोइये ने वैसा किया। राजा ने पुत्र-मांस के साथ भोजन किया। राजा के भय से न कोई रो पीट सका न कुछ कह ही सका।

राजा ने भोजन खा, शय्या पर सो, प्रातःकाल उठ नशे के उतरने पर कहा—मेरे पुत्र को लाओ। उस समय देवी रोती हुई चरणों पर गिर पड़ी। राजा ने पूछा—'भद्रे ! क्या हुआ ?' बोली—"देव ! कल आपने पुत्र को मारकर पुत्र-मांस के साथ भोजन खाया।' राजा ने पुत्रशोक से अभिभूत हो रो पीट कर 'मुझे यह दुःख सुरापान के कारण हुआ' समझ सुरापान में दोष देख धूल से मुँह पोछते हुए प्रतिज्ञा की—"अब से मैं अर्हत्व प्राप्त होने तक ऐसी विनाशकारिणी सुरा को कभी नहीं पीऊँगा।" तब से मद्य नहीं पी। इसीलिए मैंने महाराज, यह गाथा कही।

तब राजा ने पूछा—मित्र ! क्या देखकर तू स्नेह-हीन हो गया ? उस

कर सोचा—खाली हाथ जाने से मुझे क्या लाभ ? इस बन्दरी को मार कर जाऊँगा।

उसने उसे मारने के लिए धनुष हाथ में लिया। बोधिसत्व ने यह देख चुल्लनन्दिय को कहा—तात ! यह आदमी मेरी माँ को मारना चाहता है। मैं इसे अपना जीवन दान दूँगा। तू मेरे मरने पर माता की सेवा करना। फिर शाखाओं की ओट से निकल 'हे पुरुष ! मेरी माँ को मत मार। यह अन्धी है। बुढ़ापे से दुर्बल है। मैं इसे जीवनदान देता हूँ। तू इसे न मार कर मुझे मार' वह उससे प्रतिज्ञा करा जाकर तीर के पास बैठा।

उस निर्दयी ने बोधिसत्व को बींध, गिराकर फिर उसकी माँ को भी मारने को धनुष उठाया। इसे देख चुल्लनन्दिय ने सोचा—यह मेरी माँ को मारना चाहता है। एक दिन भी यदि मेरी माँ जी गई, तो 'प्राण बचे' ही कहा जाएगा। मैं इसे अपना जीवनदान दूँगा। उसने शाखाओं की ओट से निकल कर कहा—"हे पुरुष ! मेरी माँ को मत मार। मैं इसे जीवन-दान देता हूँ। तू मुझे मार। हम दोनों भाइयों को ले जाकर हमारी माँ को जीवन दान दे।" उससे प्रतिज्ञा ले, वह तीर के पास आ बैठा। शिकारी उसे मार [illegible] बच्चों के लिए होगी' सोच, उनकी माता को भी मार, तीनों [illegible] लटका कर घर की ओर गया।

[illegible] के घर पर बिजली गिर पड़ी। उसकी भार्या और दो लड़के [illegible] जल गए। पुष्ट-बाँस और खम्भा मात्र बचे।

[illegible] पर ही एक आदमी ने उसे देख यह समाचार कहा। [illegible] के आने से इसका प्रतिभूत हुआ कि इसी अगत पर [illegible] [illegible] उतार [illegible] हुआ [illegible] [illegible] पर गिर पड़ा। फिर वह उठा। [illegible] [illegible] निकली। [illegible] [illegible] को बन्द कर [illegible] [illegible] को कहा—

इदं तदाचरियवचो पारासरियो यदब्रवी,
[illegible]

यानि करोति पुरिसो तानि अत्तनि पस्सति
कल्याणकारी कल्याणं पापकारी च पापकं,
यादिसं वपते बीजं तादिसं हरते फलं ॥

इसका अर्थ—जो पारासरिय (पाराशर्य) ब्राह्मण ने कहा कि तू पापकर्म
मत कर, पीछे तुझे ही कष्ट देगा—यह उस आचार्य्य का वचन है। आदमी
शरीर, वाणी अथवा मन से जो भी कर्म करता है उनका फल पाता हुआ उन्हीं
कर्मों को अपने में देखता है। शुभकर्म करने वाला शुभफल पाता है, पापकर्म
करने वाला बुरा अनिष्टकर फल पाता है। दुनिया में भी जैसा बीज बोता
है, वैसा ही फल पाता है। बीज के अनुसार बीज के अनुकूल ही फल ले जाता
, ग्रहण करता है, भोगता है।

इस प्रकार रोता हुआ वह पृथ्वी में दाखिल हो अवीची महानरक में
हुआ।

शास्ता ने "भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त कठोर, परुष तथा दयाहीन
र पहले भी कठोर, परुष तथा दयाहीन ही रहा है" कह यह धर्मदेशना ला
क का मेल बैठाया।

उस समय शिकारी देवदत्त था। चारों दिशाओं में प्रसिद्ध आचार्य्य
न। चुल्लनन्दिय आनन्द। माता महाप्रजापति गौतमी। महानन्दिय
ही था।

२२३. पुटभत्त जातक

नमे नमन्तस्स..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक
के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

श्रावस्ती नगर निवासी एक गृहस्थ जनपदनिवासी एक गृहस्थ के साथ लेन-देन करता था। वह अपनी भार्य्या को लेकर अपने करजदार के पास गया। उसने 'दे नहीं सकता हूँ' कह, कुछ न दिया। वह क्रुद्ध हो बिना कुछ खाए ही चल दिया।

रास्ते में उसे भूख से पीड़ित देख, रास्ता चलने वाले आदमियों ने भात की पोटली दी—भार्य्या को भी देकर खाओ। उसने वह ले उसे न देने की इच्छा से कहा—भद्रे, यह चोरों के ठहरने का स्थान है। तू आगे आगे जा। फिर सब भात खा चुकने पर उसे खाली पोटली दिखा कहा—भद्रे, उन्होंने भात-रहित खाली पोटली ही दी। यह जान कि वह अकेला ही खा गया, उसे दुःख हुआ।

वे दोनों जेतवन विहार की पिछली तरफ से जाते हुए पानी पीने के लिए जेतवन में प्रविष्ट हुए। शास्ता भी उनके आने की प्रतीक्षा करते हुए गन्धकुटी की छाया में वैसे ही बैठे जैसे रास्ता घर कर कोई शिकारी बैठा हो। वे दोनों शास्ता को देख, पास जा, प्रणाम कर बैठे।

शास्ता ने उनका कुशल समाचार पूछ स्त्री से प्रश्न किया—भद्रे ! क्या यह तेरा स्वामी तेरा हितैषी है, क्या तेरे प्रति स्नेह रखता है ?

"भन्ते, मेरा तो इसके प्रति स्नेह है, किन्तु यह मेरे प्रति स्नेह-रहित है। और दिनों की बात रहने दें आज ही इसे रास्ते में भात की पोटली मिली। यह बिना मुझे दिए ही स्वयं खा गया।"

"उपासिका, तू नित्य इसकी हितैषिणी तथा इसके प्रति स्नेह रखती रही है। यह स्नेह-रहित ही रहा है। लेकिन जब इसे पण्डितों की कृपा से तेरे गुण मालूम होते हैं, तो यह तुझे सारा ऐश्वर्य दे देता है।"

उसके प्रार्थना करने पर (भगवान् ने) पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व अमात्य कुल में पैदा हो बड़े होने पर उसके अर्थ-धर्मानुशासक हुए।

यस्सेते चतुरो धम्मा वानरिन्द यथा तव,
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो अतिवत्तति ॥
यस्स चेते न विज्जन्ति गुणा परमभद्दका,
सच्चं धम्मो धिति चागो दिट्ठं सो नातिवत्तति ॥

[वानरेन्द्र, जिसमें तेरे समान यह चारों गुण हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को जीत लेता है। जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ गुण नहीं हैं—सत्य, धर्म, धृति और त्याग—वह शत्रु को नहीं जीत सकता।]

गुणा परमभद्दका जिसमें यह चार परम श्रेष्ठ एकत्रित होकर सम्मिलित रूप से गुण नहीं हैं, वह शत्रु को नहीं जीत सकता है।

बाकी सब पूर्वोक्त कुम्भील जातक[1] में कहे अनुसार ही है, मेल बैठाना भी।

२२५. खन्तिवण्णन जातक

"अत्थि मे पुरिसो देव. . . ." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय कोसल राजा के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके एक बहुत उपकारी आमात्य ने अन्तःपुर दूषित किया। राजा ने 'मेरा उपकारी है' सोच सहन करके शास्ता से कहा। शास्ता ने कहा—महाराज ! पुराने राजाओं ने भी इस प्रकार सहन किया है। उसके प्रार्थना करने पर (शास्ता ने) पूर्व जन्म की कथा कही—

---

[1] कुम्भील जातक=वानरिन्द जातक (१.६.५७)

ख. अतीत कथा

पूर्वकाल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय एक अमात्य ने उसके रनिवास को दूषित किया। अमात्य के सेवक ने उसके घर को दूषित किया। अमात्य ने उसके अपराध को सहन न कर सकने के कारण उसे राजा के पास ले जाकर पूछा—देव! मेरा एक सेवक है! वह मेरे सभी काम करने वाला है। उसने मेरे घर में दूषित-कर्म किया है। उसका क्या करना चाहिए? इस प्रकार पूछते हुए पहली गाथा कही—

> अत्थि मे पुरिसो देव! सब्बकिच्चेसु ब्यावटो,
> तस्स चेको अपराधत्थि तत्थ त्वं किन्ति मञ्ञसि ॥

[देव! मेरा एक सभी काम करने वाला आदमी है। उसका एक अपराध है। उस विषय में आप क्या कहते हैं?]

तस्स चेको अपराधत्थि उस पुरुष का एक अपराध है। तत्थ त्वं किन्ति मञ्ञसि उस पुरुष के अपराध के बारे में आप क्या करना चाहिए मानते हैं? जैसे आपके मन में आए वैसा दण्ड दें।

यह सुन राजा ने दूसरी गाथा कही—

> अम्हाकम्पत्थि पुरिसो एदिसो इध विज्जति,
> दुल्लभो अङ्गसम्पन्नो खन्तिरस्माकरुच्चति ॥

[हमारा भी ऐसा आदमी यहाँ है। सब गुणों से युक्त आदमी दुर्लभ है। हमें (इस विषय में) सहन करना ही अच्छा लगता है।]

अम्हाकम्पि राजाओं का भी एदिसो बहुत उपकारी (किन्तु) घर में दूषित कर्म करने वाला आदमी है। और वह इध विज्जति अभी भी यहीं रहता है। हम राजा होते हुए भी बहुत उपकारी होने से सहन करते हैं। तुम्हें राजा न होने पर भी सहना भार हुआ। अङ्गसम्पन्नो सभी गुणों से युक्त मनुष्य दुल्लभो इस कारण से अस्माकं ऐसे स्थानों पर सहन करना ही रुच्चति।

अमात्य समझ गया कि राजा ने उसीके बारे में कहा है। उसके बाद से उसने रणवास को दूषित करने का साहस नहीं किया। उसके सेवक ने भी यह जानकर कि अमात्य को पता लग गया है उसके बाद से वह कर्म करने का साहस नहीं किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय मैं ही बाराणसी-राजा था। वह अमात्य भी राजा ने शास्ता को कह दिया जान तब से वह कर्म नहीं कर सका।

२२६. कोसिय जातक

"काले निक्खमणा साधु. . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय कोशल नरेश के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

कोशल राजा प्रत्यन्त देश को शान्त करने के लिए बेर मुनासिब समय पर निकल पड़ा। कथा उपरोक्त कथा[1] के सदृश ही है।

ख. अतीत कथा

शास्ता ने पूर्व(-जन्म) की कथा लाकर कहा—महाराज! पूर्वकाल में बाराणसी नरेश ने नामुनासिब समय निकल उद्यान में पड़ाव डलवाया। उसी समय एक उल्लू बाँसों के झुण्ड में घुस कर छिप रहा। कौओं की सेना ने आकर उसे घेर लिया कि निकलते ही पकड़ेंगे। उसने सूर्यास्त तक

---

[1] देखें कटाप मुट्ठि जातक (१७६)

उसने वहाँ ग्राम द्वार पर पहुँच चीवर पहना। उसे देख ठिगने ने चार मेढ़े की तरह जल्दी से आकर कहा—श्रमण ! मेरे प्रश्न का उत्तर दे।

"उपासक ! गाँव से भिक्षा माँग कर, यवागु लाकर आसनशाला लौट आने दे।"

उसने उसके यवागु लेकर आसन-शाला लौट आने पर भी वैसे ही कहा। उस भिक्षु ने भी अभी यवागु पीने दे, फिर आसन-शाला बुहार लेने दे, फिर शलाका-भात ले आने दे कह शलाका-भात ला उसीको पात्र पकड़ा कर कहा—आ। तेरे प्रश्न का उत्तर दूँगा। इस प्रकार उसे गाँव के बाहर ले जा चीवर को इकट्ठा कर कंधे पर रख, हाथ से पात्र ले खड़ा हुआ। वहाँ भी वह बोला—श्रमण ! मेरे प्रश्न का उत्तर दे। उसने 'तेरे प्रश्न का उत्तर देता हूँ' कह एक ही मार से गिरा हड्डियों को चूर चूर करते हुए पीटा फिर मुँह में गूह डाल धमका कर गया—अब से यदि इस गाँव में आने वाले किसी भिक्षु से प्रश्न पूछा तो खबर लूँगा। उसके बाद से वह भिक्षु को देखकर ही भाग जाता।

आगे चलकर उस भिक्षु की वह करनी धर्मसभा में प्रकट हो गई। एक दिन धर्मसभा में बातचीत चली—आयुष्मानो ! अमुक भिक्षु ठिगने के मुँह में गूह डाल कर गया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ ! यहाँ बैठे क्या बातचीत कर रहे हो ? "अमुक बातचीत" कहने पर "भिक्षुओ ! उस भिक्षु ने केवल अभी उसे गन्दगी नहीं लगाई। पहले भी लगाई है" कह पूर्व जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में अङ्ग-मगध वासी एक दूसरे के राष्ट्र को जाते हुए, एक दिन दोनों राष्ट्रों की सीमा के बीच एक सराय के पास बैठ, शराब पी, मत्स्य-मांस खा प्रातःकाल ही गाड़ियों को जोत चल पड़े। उनके चले जाने पर एक गूह खाने वाला कीड़ा गूह की दुर्गन्ध से वहाँ आ, उनकी छोड़ी शराब का पानी समझ पी मस्त होकर गूह के ढेर पर चढ़ा। गीला गूह उसके चढ़ने से थोड़ा नीचे को दबा। वह चिल्लाया—पृथ्वी मेरा बोझ नहीं उठा सकती है। उसी समय एक मस्त हाथी उधर आया। गूह की दुर्गन्ध सूंघ घृणा कर चल दिया। कीड़े

मर्य्यादा लाँघ दी, जो अकुशल धर्म में प्रतिष्ठित हो गए, ऐसे आदमियों
मन्त्र वा औषध से क्या चिकित्सा होगी? ऐसे मूर्ख को दवाइयों से मन्
नही किया जा सकता।

इस प्रकार बोधिसत्त्व ने राजा को यह बात समझाते हुए आगे यूँ कहा—
"महाराज! यदि तू इन तीनों राज्यों को प्राप्त करेगा, तो इन चारों नगर
पर राज्य करता हुआ क्या तू एक ही साथ चार चार वस्त्र पहनेगा? अथवा
चार चार सोने की थालियों में भोजन करेगा? अथवा चार चार पलँगों प
सोएगा? महाराज! तृष्णा के वशीभूत न होना चाहिए। यह विपत्ति क
मूल है। यह बढ़ने पर अपने को बढ़ाने वाले आदमी को आठ महा निरयों
में, सोलह उस्सद निरयों में तथा शेष नाना प्रकार के अपायों में जा गिराती है।"

इस प्रकार राजा को निरय आदि के भय से धमका कर बोधिसत्त्व ने
धर्मोपदेश दिया। राजा भी धर्म सुनकर शोकरहित हुआ। उसी समय उसका
रोग जाता रहा। शक्र भी इसे उपदेश दे, शीलों में प्रतिष्ठित कर देवलोक को
ही चला गया।

वह भी उस समय से लेकर दानादि पुण्यकर्म करके यथाकर्म (परलोक) गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय राजा
वामनीत ब्राह्मण था। शक्र तो मैं ही था।

२२९. पलासी जातक[1]

"गजग्गमेघेहि ..." यह शास्ता ने जेतवन में रहते समय पलासी परि-
व्राजक के बारे में कही—

---

[1] पलासि जातक

क. वर्तमान कथा

वह शास्त्रार्थ करने के उद्देश्य से सारे जम्बूद्वीप में घूमा। कोई शास्त्रार्थ करने वाला न मिला। घूमता घूमता वह श्रावस्ती पहुँचा। वहाँ जाकर लोगों से पूछा कि मेरे साथ कोई शास्त्रार्थ कर सकता है? मनुष्यों ने इस प्रकार बुद्ध गुणों की प्रशंसा की—तेरे जैसे हजार हों तो उनके साथ भी शास्त्रार्थ कर सकने वाले, सर्वज्ञ, मनुष्यों में श्रेष्ठ, धर्मेश्वर, दूसरे वादों को जीतने वाले महान् गौतम हैं। सारे जम्बूद्वीप में भी उत्पन्न हुआ विरोधी मत उन भगवान् को नहीं हरा सकता। सभी मत उनके चरणों में आने पर इस प्रकार चूर्ण विचूर्ण हो जाते हैं जैसे लहरें किनारे पर पहुँच कर।"

परिव्राजक ने पूछा—इस समय वह कहाँ हैं? उत्तर मिला—जेतवन में। उसने सोचा—अब उसके साथ शास्त्रार्थ करूँगा। बहुत से आदमियों के साथ उसने जेतवन जाते समय, नौ करोड़ खर्च से जेत राजकुमार द्वारा बनाया हुआ जेतवन-द्वार देखा। उसने पूछा—यही श्रमण गौतम के रहने के प्रासाद हैं?

"यह तो ड्योढ़ी है।"

"यदि ड्योढ़ी ऐसी है तो निवासस्थान कैसा होगा?"

"गन्धकुटी तो अतीव है।"

उसने सोचा ऐसे श्रमण से कौन शास्त्रार्थ करेगा! वह वहीं से भाग गया। शोर मचाते हुए कुछ मनुष्यों ने जेतवन में प्रवेश किया। शास्ता ने पूछा—क्यों असमय आए? उन्होंने वह समाचार कहा। शास्ता ने कहा—उपासको! केवल अभी नहीं, वह पहले भी मेरे निवासस्थान की ड्योढ़ी को ही देख कर भाग गया था। उनके प्रार्थना करने पर शास्ता ने पूर्व जन्म की बात कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व काल में गन्धार राष्ट्र में तक्षशिला में बोधिसत्त्व राज्य करते थे। वाराणसी में था ब्रह्मदत्त। उसने तक्षशिला पर अधिकार करने की इच्छा से बड़ी सेना के साथ आकर, नगर के समीप पहुँच, सेना को यह आज्ञा देते हुए

सिंहनाद करते हुए, सिंह-बच्चे के समान धर्म-देशना कर रहे थे। परिव्राजक दशबलधारी के ब्रह्म-शरीर जैसे रूप, पूर्ण चन्द्र जैसी शोभा वाले मुँह तथा स्वर्णपट जैसे ललाट को देख कर, 'इस प्रकार के उत्तम पुरुष को कौन जीत सकेगा ?' सोच उठा और दूसरी मण्डली में घुसकर भाग गया। जनता ने उसका पीछा कर, रुक, शास्ता से वह वृत्तान्त कहा। शास्ता बोले—न केवल अभी वह परिव्राजक मेरे स्वर्ण-वर्ण मुख को देख कर भाग गया है, वह पहले भी भागा है। इतना कह, पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्व बाराणसी में राज्य करते थे। तक्षशिला में एक गन्धार राजा था। उसने बाराणसी जीतने की इच्छा से चतुरङ्गिनी सेना के साथ आकर, नगर घेर लिया। फिर नगर-द्वार पर खड़े हो अपनी सेना को देखते हुए, 'इतनी सेना को कौन जीत सकेगा' सोच अपनी सेना की प्रशंसा करते हुए पहली गाथा कही—

> धजमपरिमितं अनन्तपारं
> दुप्पसहं धङ्केहि सागरमिव;
> गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो
> दुप्पसहो अहमज्ज तादिसेन ॥

[मेरी असीम ध्वजाएँ हैं, अनन्त सेना है। जिस प्रकार कौवों के द्वारा सागर दुर्लंघ्य होता है (अथवा) हवा के द्वारा पर्वत दुर्जेय होता है, उसी प्रकार मैं आज वैसे शत्रु द्वारा दुर्जेय हूँ।]

धजमपरिमित यह मेरे रथों में मोरपङ्खों में लगाकर ऊँची की हुई ध्वजा अपरिमित है, बहुत हैं, सैकड़ों हैं। अनन्तपारं मेरी सेना भी, इतने हाथी तथा इतने घोड़े हैं इस प्रकार गिनी नहीं जा सकती।

दुप्पसहं शत्रुओं द्वारा जीती नहीं जा सकती। जैसे क्या ? धङ्कों सागरमिव जैसे सागर बहुत कौवों द्वारा भी अतिक्रमण नहीं किया जा सकता उसी प्रकार दुरधर्ष। गिरिमिव अनिलेन दुप्पसहो यह मेरी सेना, दूसरी सेना

इस प्रकार समझाते हुए का कहना सुन, गन्धार राजा उसके स्वर्णपट्ट हुए महा सम्राट को देख, भयभीत हो, डर, भागकर अपने नगर ही चला गया।

शास्ता ने यह धर्म-देशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गन्धार राजा सन्यासी परिव्राजक था। वाराणसी राजा तो मैं ही था।

तस्य सुखेन खादति मानो ही माखरो वह अर्थात् जो दुष्ट-पुरुष का अनार्य्य आचार्य से विद्या और ज्ञान ग्रहण करता है वह वहाँ ज्ञान से खाता है अर्थात् उसके पास से थुतज्ञान से वह अपने को ही नष्ट करता है।

अट्ठकथा' में तेनेव सो तस्य सुखेन खादति भी पाठ है। उसका भी 'वह वहाँ ज्ञान से अपने को खाता है' ही अर्थ है। अनरियो कुक्कति पानदूपमो अनार्य्य (आदमी) शराब जूने जैसा कहा जाता है। जिस प्रकार शराब जूने आदमी को खाते हैं, उसी प्रकार यह ज्ञान से खाता है तो अपने आप अपने को ही खाता है। अथवा जूते से जखमी पानदू। जूते से पीड़ित, जूते से खाए गए पैर से मतलब है। इसलिए अपने आपको जो ज्ञान से हानि पहुँचाता है, वह उस ज्ञान से खाया जाने के कारण अनार्य्य कहलाता है। पानदूपमो का यही अर्थ है कि जूते से पीड़ित पाँव की तरह।

राजा ने सन्तुष्ट हो बोधिसत्त्व को महान् सम्पत्ति दी।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय शिष्य देवदत्त था। आचार्य्य तो मैं ही था।

२३२. वीणाथूण जातक

एकचिन्तितोय मयमत्थो यह शास्ता ने जेतवन में विहरते समय एक कुमारी के बारे म कही।

---

[1] पुरानी सिंहल अट्ठकथा।

बोधिसत्त्व भी सेठ की लड़की को घर लाने की इच्छा से बड़ी बारात के साथ वाराणसी जाते हुए उसी रास्ते पर हो लिए। वे दोनो सारी रात रास्ता चलते रहे। रात भर सर्दी खाने के कारण अरुणोदय होने पर कुबड़े के शरीर का वायु कुपित हो गया। बड़ी पीड़ा होने लगी। वह रास्ते से हट, पीड़ा से बेहोश होने के कारण वीणा के दण्डे की तरह मुड़कर पड़ रहा। सेठ की लड़की भी उसके चरणों में बैठ रही। बोधिसत्त्व ने सेठ की लड़की को कुबड़े के चरणों में बैठे देख, पहचान कर, पास आ, सेठ की लड़की से वार्तालाप करते हुए पहली गाथा कही—

एकचिन्तितोव अयमत्थो बालो अपरिनायको,
नहि खुज्जेन वामेन भोति सङ्गन्तुमरहसि॥

[यह (कुबड़े के साथ भागने की बात) एक देसी चिन्ता है। (कुबड़ा) मूर्ख है, जाने में असमर्थ है। कुबड़े बौने के साथ आपका जाना उचित नहीं।]

एकचिन्तितोव अयमत्थो, अम्म! यह जो तू सोचकर इस कुबड़े के साथ निकल भागी यह बात तेरी अकेली की ही सोची होगी। बालो अपरिनायको यह कुबड़ा मूर्ख है, दुर्बुद्धि होने से बूढ़ा होने पर भी बाल ही है। दूसरा पकड़ कर ले जाने वाला न होने पर जाने में असमर्थ होने से अपरिनायक। नहि खुज्जेन वामेन भोति सङ्गन्तुमरहसि, इस कुबड़े के साथ, वामनरूप होने से बौने के साथ, तुम्हें जो महान् कुल में उत्पन्न हुई हो, सुन्दर हो, दर्शनीय हो जाना योग्य नहीं।

उसकी इस बात को सुनकर सेठ की लड़की ने दूसरी गाथा कही—

पुरिसूसभं मञ्ञमाना अहं खुज्जमकामयिं,
सोयं सङ्कुटितो सेति छिन्नतन्ति यथा थुणा॥

[मैंने कुबड़े को पुरुषों में वृषभ समझ कर उसकी इच्छा की। यह तार टूटी वीणा की तरह सुकड़ा हुआ पड़ा है।]

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बोधिसत्व वाराणसी में धर्म से राज्य करते हुए एक दिन उद्यान में जाकर पुष्करिणी के किनारे गए। नृत्यगीतादि में जो चतुर थे उन्होंने नाचना गाना आरम्भ किया। नृत्यगीतादि से आकृष्ट होने के कारण मच्छ कछुवे इकट्ठे होकर राजा के ही साथ साथ चलने। ताड़ के तने के समान इकट्ठे हुए मच्छों को देखकर राजा ने आमात्यों से पूछा—यह मच्छ मेरे साथ साथ ही क्यों चलते हैं ? आमात्यों ने उत्तर दिया—यह देव की सेवा में हैं। राजा ने 'यह मेरी सेवा में हैं' सन्तुष्ट हो उनके लिए नित्य-भोजन बांध दिया। रोज अम्मण[1] भर चावल पकता। भात खिलाने के समय कोई मच्छ आते कोई न आते। भात नष्ट होता। राजा से यह बात कही गई। राजा ने कहा—अब से नगाडा बजाकर नगाड़े की आवाज पर मच्छों के इकट्ठे होने पर उन्हें भात दिया जाए। तब से भात का प्रबन्ध करने वाला नगाडा बजवा कर, आए हुए मच्छो को भात देता। वे भी नगाडे की आवाज पर इकट्ठे हो कर खाते। उनके इस प्रकार इकट्ठे होकर भात खाने के समय एक मगर मच्छ आकर उन्हें खा जाता। भोजन-प्रबन्धक ने राजा से कहा। राजा ने उसे सुनकर कहा—जिस समय मगर-मच्छ मच्छो को खाता हो उसे तीर से बींध कर पकड़ लो। उसने 'अच्छा' कह, जाकर नौका पर खड़े हो मच्छ खाने के लिए आए मगरमच्छ पर तीर चलाया। वह उसकी पीठ में घुस गया। मगरमच्छ पीडा से व्याकुल हो उसे लेकर ही भाग गया। भोजन-प्रबन्धक ने उसका बिन्धना जान उसे सम्बोधन कर पहली गाथा कही—

> कामं यहिं इच्छसि तेन गच्छ
> विद्धोसि मम्मम्हि विकण्णकेन;
> हतोसि भत्तेन सवादितेन
> लोलो च मच्छे अनुबन्धमानो ॥

[जहां इच्छा हो वहां जा। तीर से मर्म स्थान में बिंधा है। स्वादिष्ट

---

[1] एक अम्मण = ¾ करीस = ११ द्रोण।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक निगम-ग्राम में किसी ब्राह्मण कुल में पैदा हुए। बड़े होने पर ऋषियों के प्रव्रज्या-क्रम से प्रव्रजित हो हिमालय में रहने लगे। वहाँ चिरकाल तक रहकर निमक-खटाई खाने के लिए वाराणसी पहुँच, राजा के बाग में रह, अगले दिन वाराणसी में प्रवेश किया। वाराणसी का सेठ उनकी चालढाल से प्रसन्न हुआ। उसने उन्हें घर ले जाकर भोजन खिलाया। फिर उद्यान में रहने का वचन ले सेवा करते हुए उद्यान में बसाया। उनमें परस्पर स्नेह पैदा हो गया।

बोधिसत्व के प्रति प्रेम और विश्वास होने के कारण वाराणसी-सेठ एक दिन इस प्रकार सोचने लगा—प्रव्रजित रहना दुष्कर है। मैं अपने मित्र वच्छनख परिव्राजक को गृहस्थ बना सारा धन बीच में से आधा आधा बाँट कर उसे दे दूँ। दोनों मिलकर रहें। उसने एक दिन भोजन के अनन्तर उसके साथ मधुर बातचीत करते हुए कहा—भन्ते वच्छनख! प्रव्रजित रहना दुख है। गृहस्थ रहने में सुख है। आएँ दोनों मिलकर विषयों का भोग करते हुए रहें। यह कह पहली गाथा कही—

सुखा घरा वच्छनख सहिरञ्ञा सभोजना,
यत्थ भुत्वा च पीत्वा च सयेय्याथ अनुस्सुको ॥

[वच्छनख! सोने और खाद्य पदार्थों से भरपूर घर सुखकर हैं, जहाँ खा पीकर आदमी निश्चिन्त सोता है।]

सहिरञ्ञा सोने चाँदी से युक्त। सभोजना बहुत खाद्य भोज्य पदार्थों से युक्त। यत्थ भुत्वा च पीत्वा च जिन सोने और भोजनों से युक्त घरों में नाना प्रकार के [illegible] और नाना प्रकार के पान पीकर। सयेय्याथ अनुस्सुको [illegible] अनुत्सुकता पर निश्चिन्त होकर [illegible]।

नास्स सीलं विजानाथ अनञ्ञाय पसंसथ,
अम्हे द्विजो न पालेति तेन पक्खो न फन्दति ॥

[इनके स्वभाव को नहीं जानते। बिना जाने प्रशंसा करते हो। यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता। इसीलिए पर नहीं फड़फड़ाता।]

अनञ्ञाय—न जानकर। अम्हे द्विजो न पालेति यह पक्षी हमारी रक्षा नहीं करता, हमें नहीं सँभालता। यह सोचता है कि मैं इनमें से किसे खाऊँगा। तेन पक्खो न फन्दति इसीलिये पक्षी न फड़फड़ाता है, न चलता है।

ऐसा कहने पर मच्छों के समूह ने पानी में क्षोभ पैदा करके बगुले को भगा दिया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय बगुला (यह) ढोंगी था। मच्छराज तो मैं ही था।

२३७. साकेत जातक

"को नु खो भगवा हेतु..." यह शास्ता ने साकेत के समीप विहार करते समय साकेत ब्राह्मण के बारे में कही।

अतीत कथा और वर्तमान कथा भी एकक निपात (पहले परिच्छेद) की पूर्वोक्त साकेत जातक[1] में आ ही चुकी है। हाँ, तथागत के विहार जाने पर भिक्षुओं ने पूछा—भन्ते ! यह स्नेह कैसे स्थापित हो जाता है ? यह पूछते हुए उन्होंने पहली गाथा कही—

---

[1] साकेत जातक (१. ७. ६८)

को नु खो भगवा हेतु एकच्चे इध पुग्गले,
अतीव हृदयं निब्बाति चित्तञ्चापि पसीदति ॥

[भगवान ! इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी के प्रति हृदय अति ठण्डा हो जाता है और चित्त प्रसन्न हो जाता है।]

अर्थ—इसका क्या कारण है कि किसी किसी आदमी को देखते ही हृदय अति ठण्डा हो जाता है, सुगन्धित शीतल जल के हजारों घड़ों से सींचे हुए की तरह शीतल हो जाता है, किसी के प्रति नहीं होता ? किसी को देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है, कोमल पड़ जाता है, प्रेम में जुड़ जाता है, किसीसे नहीं जुड़ता ?

शास्ता ने [illegible] प्रेम का कारण बताते हुए दूसरी गाथा कही—

पुब्बेव सन्निवासेन पच्चुप्पन्नहितेन वा,
एवं तं जायते पेमं उप्पलंव यथोदके ॥

[[illegible] ... से प्रेम पैदा होता है [illegible]]

[illegible] ... इस जन्म में चाहे [illegible] ... चाहे पति, चाहे [illegible] ... किसी के साथ एक [illegible] ... पुब्बेव सन्निवासेन का [illegible] ... स्नेह [illegible] ... पच्चुप्पन्नहितेन वा एवं तं जायते पेमं। [illegible] ... उप्पलंव यथोदके व का [illegible] ... उत्पन्न [illegible] ... में पैदा [illegible] ... में प्रेम पैदा

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय के ब्राह्मण और ब्राह्मणी यही दो जन थे। पुत्र तो मैं ही था।

२३८. एकपद जातक

"इङ्घ एकपदं तात..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक कौटुम्बिक के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

यह कौटुम्बिक श्रावस्ती निवासी था। एक दिन गोद में बैठे हुए पुत्र ने अर्थ का द्वार नामक प्रश्न पूछा। उसने सोचा यह प्रश्न बुद्ध का ही विषय है। इसका उत्तर अन्य कोई नहीं दे सकेगा। वह पुत्र को लेकर जेतवन गया और शास्ता को प्रणाम करके कहा—भन्ते ! इस बालक ने गोद मे बैठे बैठे अर्थ का द्वार प्रश्न पूछा है। मैं उसको नही जानता था। इसलिए यहां आया हूँ। भन्ते ! इस प्रश्न को कहे।

शास्ता ने कहा—"उपासक ! यह बालक केवल अभी अर्थ की खोज करने वाला नहीं है। इसने पहले भी अर्थ-खोजी होकर पण्डितों से यह प्रश्न पूछा है। पुराने पण्डितों ने इसे यह कहा भी है। किन्तु जन्मान्तर की बात होने से अब इसे उसका ध्यान नहीं।" इतना कह उसके प्रार्थना करने पर पूर्व-जन्म की बात कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी मे ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्त्व ने सेठ के कुल में पैदा हो, बड़े होने पर पिता के मरने के बाद सेठ का स्थान

हरे मेण्डक ने उत्तर दिया—हाँ, मित्र अच्छा लगता है। किस कारण से? यदि तू अपने प्रदेश में आने पर मछलियों को खाता है तो मछलियाँ भी तुझे अपने प्रदेश में आने पर खाती हैं। अपने अपने प्रदेश में, विषय में, गोचर भूमि में कोई कमजोर नहीं होता। यह कहकर दूसरी गाथा कही—

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति,
यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति सो विलुत्तो विलुम्पति ॥

[जब तक सामर्थ्य होती है आदमी (दूसरों) को लूटता ही है। जब दूसरे लूटते हैं, तो वह लूटने वाला लुटता है।]

विलुम्पतेव पुरिसो यावस्स उपकप्पति जब तक पुरुष का ऐश्वर्य रहता है तब तक वह दूसरों को लूटता ही है। याव सो उपकप्पति यह भी पाठ है। जितने समय तक वह आदमी लूट सकता है, अर्थ है। यदा चञ्ञे विलुम्पन्ति जब दूसरे ऐश्वर्यशाली होकर लूटते हैं। सो विलुत्तो विलुम्पति वह लुटेरा लूटा जाता है। विलुम्पते भी पाठ है। अर्थ यही है। विलुम्पन्ते भी पढ़ते हैं। उसका अर्थ ठीक नहीं बैठता। इस प्रकार लूटने वाला फिर लूटा जाता है।

बोधिसत्व के मुकद्दमे का निर्णय देने पर मछलियों ने जल-सर्प की दुर्बलता जान, शत्रु को पकड़ने के लिए जाल से निकल उसे वहीं मार डाला और चली गई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय जल-सर्प अजातशत्रु था। नील-मेण्डक तो मैं ही था।

हिंसाने नाना प्रकार के दण्ड बति आदि से पीड़ा दी। पिङ्गलेन पिङ्गल आँख वाले ने, उसकी दोनों आँखें एकदम पिङ्गल वर्ण की, बिल्ली की आँखों के समान थीं। इसीसे उसका नाम पिङ्गल हुआ। पच्चयं वेदयन्ति प्रीति अनुभव करते हैं। अक्खहनेत्तो पिङ्गल आँख वाला। कस्मा नु त्वं नु किस कारण से रोता है? अट्ठकथा में कस्मा नुवं पाठ है।

उसने उसकी बात सुन उत्तर दिया—मैं इस शोक से नहीं रोता हूँ कि महापिङ्गल मर गया। मेरे सिर को तो सुख हुआ है। पिङ्गल राजा प्रासाद से उतरते हुए और चढ़ते हुए हथौड़ी से चोट लगाने की तरह मेरे सिर पर आठ आठ टोके लगाता था। वह परलोक जाकर भी जैसे मेरे सिर में टोके लगाता था उसी तरह निरयपालकों तथा यमराज के सिर में भी टोके लगाएगा। 'यह हमें बहुत कष्ट देता है' सोच वह इसे फिर यहाँ लाकर छोड़ जा सकते हैं। वह मेरे सिर में फिर टोके मारेगा। मैं इस भय के कारण रोता हूँ। यह अर्थ प्रकट करते हुए दूसरी गाथा कही—

> न मे पियो आसि अक्खहनेत्तो
> भायामि पच्चागमनाय तस्स,
> इतो गतो हिंसेय्य मच्चुराजं
> सो हिंसितो आनेय्य पुन इध ॥

[मुझे पिङ्गल नेत्र प्रिय न था। मुझे डर है कि वह फिर न लौट आए। यहाँ से जाकर वह यमराज को कष्ट दे। और (कहीं) यमराज कष्ट पाकर उसे फिर यहाँ ले आए ।]

बोधिसत्व ने उसे आश्वासन दिया—वह राजा लकड़ी के हजार भारों से जला दिया गया है। सैकड़ों घड़ों से (चिता) बुझा दी गई है। जिस जगह जलाया गया, वह जगह चारों ओर से खन दी गई है। जो परलोक जाते हैं उनका यह स्वभाव है कि वह दूसरी जगह जन्म ग्रहण करते हैं। फिर उसी शरीर से नहीं आते हैं। इसलिए तू मत डर।

यह गाथा कही—

दूसरा परिच्छेद

१०. सिगाल वर्ग

२४१. सब्बदाठ जातक

"सिगालोमानत्थद्धो ." यह शास्ता ने वेळुवन में विहार करते समय देवदत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

अजातशत्रु को प्रसन्न कर देवदत्त ने जो लाभ सत्कार पैदा किया था वह उसे देर तक स्थिर न रख सका। नाळागिरि (हाथी) का प्रयोग करने के समय जो आश्चर्य्य देखा गया उस समय से वह लाभ-सत्कार नष्ट हो गया।

एक दिन भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो, देवदत्त लाभ-सत्कार पैदा करके चिरकाल तक स्थिर न रख सका। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी देवदत्त ने अपने लाभ-सत्कार को नष्ट किया है, पहले भी नष्ट किया ही है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व उसका पुरोहित था। तीनों वेदों तथा अठारह शिल्पों में पारङ्गत। वह पृथ्वीजय मन्त्र जानता था। पृथ्वीजय मन्त्र जापमन्त्र है।

एक दिन बोधिसत्व उस मन्त्र को सिद्ध करने की इच्छा से एक सूनी जगह में एक पत्थर पर बैठकर मन्त्र जाप करने लगा। वह मन्त्र किसी दूसरे

बोधिसत्व ने "यह है" जान अट्टालिका पर चढ़ मुनादी करवा दी कि सारी बारह योजन वाराणसी के नगर निवासी अपने अपने कानों के छिद्रों को माष (की दाल) के आटे से लीप लें। जनता ने मुनादी सुन बिल्लियों से लेकर सभी जानवरों के तथा अपने कानों के छिद्र माष के आटे से इस प्रकार लीप लिए कि दूसरे का शब्द न सुन सकें।

बोधिसत्व ने फिर अट्टालिका पर चढ़कर पुकारा—

"सब्बदाठ!"

"ब्राह्मण ! क्या है।"

"इस राज्य को कैसे ग्रहण करेगा।"

"सिंहनाद करवा कर, मनुष्यों को डरा कर, जान मरवा कर ग्रहण करूँगा।"

"सिंहनाद नहीं करवा सकेगा। जाति-सम्पन्न, लाल हाथ पाँव वाले, केशर सिंह राज तेरे जैसे नीच गीदड की आज्ञा नहीं मानेंगे।"

गीदड ने अभिमान से चूर हो कहा—दूसरे सिंह रहें। जिस सिंह की पीठ पर मैं बैठा हूँ उसीसे सिंहनाद करवाऊँगा।

"यदि सामर्थ्य है तो सिंहनाद करवा।"

जिस सिंह पर बैठा था उसने उसे पाँव से इशारा किया कि सिंहनाद कर। सिंह ने हाथी के सिर पर मुँह रख तीन बार ऐसा सिंहनाद किया, जैसा कोई न कर सके। हाथियों ने डरकर गीदड को पैरों में गिरा पाँव से उसके सिर को कुचल चूर्ण विचूर्ण कर दिया। सब्बदाठ वहीं मर गया। वे हाथी भी सिंह-नाद सुनकर भय के मारे एक दूसरे से भिड़कर वहीं मर गए। सिंहों को छोड़ कर शेष जितने भी खरगोश और बिल्लों से लेकर मृग सूअर आदि थे सभी जानवर वहीं मर गए। सिंह भाग कर अरण्य में चले गए। बारह योजन में मास का ढेर लग गया।

बोधिसत्व ने अटारी से उतर नगर द्वारों को खोल मुनादी करा दी कि सभी अपने कानों में से माष के आटे को निकाल दें और जिन्हें मास की जरूरत हो मास ले जाएँ। मनुष्यों ने गीला मास खाया और बाकी को सुखा कर वल्लूर[1] बना लिया। कहते हैं उसी समय से मास सुखाना आरम्भ हुआ।

[1] वल्लूर=सूखा मांस।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला यह अभिसम्बुद्ध गाथाएँ कह जातक का मेल बैठाया—

> सिगालो मानत्यद्धोव परिवारेन अत्थिको,
> पापुणी महर्ति भूमिं राजासि सब्बदाठिनं ॥
> एवमेवं मनुस्सेसु यो होति परिवारवा,
> सो हि तत्थ महा होति सिगालो विय दाठिनं ॥

[गीदड़ अभिमान में चूर था। उसे और भी "परिवार" चाहिए था। वह महान् पद को प्राप्त हो गया—सभी चौपायों का राजा हो गया। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जिसका "परिवार" बड़ा होता है वह भी महान् हो जाता है जैसे गीदड़ जानवरों में।]

मानत्थद्धो अनुचरों के कारण उत्पन्न अभिमान से चूर। परिवारेन अत्थिको और भी "परिवार" की इच्छा वाला होकर। महर्ति भूमिं महा-सम्पत्ति को। राजासि सब्बदाठिनं सब चौपायों का राजा था। सो हि तत्थ महा होति जो परिवार युक्त आदमी है यह उन परिवारों में महान् होता है। सिगालो विय दाठिनं जैसे गीदड़ चौपायों में महान् हुआ उसी प्रकार महान् होता है। वह उस गीदड़ की तरह प्रमाद के कारण विनाश को प्राप्त होता है।

उस समय गीदड़ देवदत्त था। राजा सारिपुत्र था। पुरोहित तो मैं ही था।

२४२. सुनख जातक

"बालो वतायं सुनखो . . ." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय अम्बल-कोष्ठक आसनशाला में भात खाने वाले कुत्ते के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसके जन्म के समय से ही कहारों ने उसे वहाँ पोसा था। वह वहाँ भात खाता हुआ आगे चलकर मोटा गया। एक दिन एक ग्रामवासी वहाँ आया। उसने कुत्ते को देखा और कहारों को चादर तथा कार्षापण दे कुत्ते को चमड़े के पट्टे से बाँध कर ले गया। वह ले जाने के समय भौंका नहीं। जो जो दिया गया खाता हुआ पीछे पीछे गया।

तब उस आदमी ने सोचा कि अब यह मुझसे प्रेम करता है और पट्टा खोल दिया। वह छूटते ही एक दौड़ में आसनशाला आकर पहुँचा। भिक्षुओं ने उसे देख और उसका किया जान शाम को धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! आसनशाला का कुत्ता बन्धन से मुक्त होने में चतुर है। छूटते ही फिर आ गया है। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—"भिक्षुओ, यह कुत्ता केवल अभी बन्धन से मुक्त होने में चतुर नहीं है, पहले भी चतुर ही था।" इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व काशी राष्ट्र के एक बड़े सम्पन्न घराने में पैदा हुए। बड़े होने पर गृहस्थी कमाई।

उस समय वाराणसी में एक आदमी के पास एक कुत्ता था। वह भात के कौर खा खाकर मोटा गया। एक ग्रामवासी वाराणसी आया। उस कुत्ते को देख, उस आदमी को चादर और कार्षापण दे, कुत्ते को चमड़े की डोरी से बाँध डोरी के एक सिरे को पकड़ कर ले चला। चलते चलते जंगल के द्वार पर एक शाला में दाखिल हो कुत्ते को बाँध एक तख्ते पर लेट कर सो गया। उस समय बोधिसत्व ने किसी काम से उस जंगल में प्रवेश होने वक्त उस कुत्ते को चमड़े की डोरी से बँधे बैठे देख पहली गाथा कही—

> बालो वतायं सुनखो यो वरत्तं न खादति,
> बन्धना च पमुञ्चेय्य असितो च घरं वजे॥

[यह कुत्ता सूर्ख है जो चमड़े की डोरी को नहीं खाता है। (यदि खा जावे) तो बन्धन से छूट जाए और भरे पेट ही घर चला जाए।]

यनुच्छेव्य सुनख करे; अथवा यनोरच्छेव्य ही पाठ है। ममितो च घरं यत्वे भरे पेट ही अपने निवास-स्थान पर चला जाए।

उसे सुन कुत्ते ने दूसरी गाथा कही—

अह्रितं मे मनस्मिं मे मतो मे हदये कतं,
कालञ्च पतिकङ्खामि याव पस्सुपतु जनो॥

[यह मेरा अभिप्राय था, यह मेरे मन में था; और यह (तुम्हारा) कहना भी हृदय में रख लिया। मैं समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ जबकि लोग सो जाएँ।]

अह्रितं मे मनस्मि मे जो तुम कहते हो यह कहने से मेरा संकल्प है, वह मेरे मन ही में है। मतो मे हदये कतं तुम्हारा वचन भी मैंने हृदय में कर लिया है। कालञ्च पतिकङ्खामि समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ। याव पस्सुपतु जनो जब तक यह लोग सो जाते हैं, इन्हें नींद आ जाती है, तब तक मैं समय की प्रतीक्षा करता हूँ। नहीं तो हल्ला हो जाएगा कि यह कुत्ता भाग रहा है। इसलिए रात को जब सब सो जाएँगे चमड़े की डोरी खाकर भाग जाऊँगा।

यह कहकर वह लोगों के सो जाने पर चमड़े की डोरी खा, पेट भर कर, भागा और अपने स्वामी के ही घर गया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का कुत्ता इस समय का कुत्ता है। पण्डित पुरुष तो मैं ही था।

उस समय वाराणसी निवासी बनियों ने व्यापार के लिए उज्जैनि जाकर उत्सव घोषित होने पर चन्दा करके बहुत सा माला गन्ध विलेपन आदि तथा खाद्य भोज्य ले क्रीड़ा-स्थान पर इकट्ठे हो कहा—कि वेतन देकर एक गन्धर्व को लाओ। उस समय उज्जैनि में मूसिल नामक ज्येष्ठ गन्धर्व था। उन्होंने उसे बुलवाकर अपना गन्धर्व बनाया।

मूसिल वीणा भी बजाता था। उसने वीणा को स्वर चढ़ा कर बजाया। गुत्तिल गन्धर्व के गन्धर्व से परिचित उन लोगों को मूसिल का बजाना चटाई खुजलाने जैसा प्रतीत हुआ। कोई भी कुछ न बोला। उन्होंने अपनी प्रसन्नता न प्रकट की। मूसिल ने उनकी प्रसन्नता न देखी तो सोचा—मालूम होता है मैं बहुत तीखा बजाता हूँ। उसने मध्यम स्वर चढ़ा मध्यम स्वर से बजाया। वे तब भी उदासीन ही रहे। उसने सोचा—मालूम होता है यह कुछ नहीं जानते। स्वयं भी कुछ न जानने वाला बन उसने वीणा के तारों को ढीला कर बजाया। उन्होंने तब भी कुछ न कहा।

मूसिल बोला—भो व्यापारियो ! क्या आप लोग मेरे वीणा-वादन से प्रसन्न नहीं होते ?

"क्या तू वीणा बजाता था ? हम तो समझते रहे कि तू वीणा को कस रहा है।"

"क्या तुम मुझसे बढ़कर आचार्य को जानते हो ? अथवा अपने अज्ञान के कारण प्रसन्न नहीं होते हो ?"

"वाराणसी में जिन्होंने गुत्तिल गन्धर्व का वीणा-वादन सुना है उन्हें तुम्हारा वीणा बजाना ऐसा ही लगता है जैसे स्त्रियाँ बच्चों को सन्तुष्ट कर रही हों।"

"अच्छा, तो आपने जो खर्चा दिया है उसे वापिस ले। मुझे यह नहीं चाहिए। लेकिन हाँ, वाराणसी जाते समय मुझे साथ लेकर जाएँ।"

उन्होंने 'अच्छा' कह स्वीकार किया। जाते समय उसे साथ वाराणसी ले गए। वहाँ 'यह गुत्तिल का निवास-स्थान है' बतलाकर अपने अपने घर चले गए।

मूसिल ने बोधिसत्व के घर में प्रवेश कर वहाँ रखी हुई बोधिसत्व की बहुत ही बढ़िया वीणा देख उतारकर बजाई। बोधिसत्व के माता पिता

ने सन्तुष्ट हो घनी वर्षा बरसाते हुए की तरह बोधिसत्त्व को बहुत धन दिया। नगरवासियों ने भी वैसे ही किया।

शक्र ने भी उससे विदा लेते हुए कहा—"पण्डित ! मैं सहस्र घोड़ों वाले आजानीय रथ के साथ मातली को भेजूँगा। तू सहस्र घोड़ों वाले श्रेष्ठ वैजयन्त रथ पर चढ़कर देवलोक आना।" उसके वहाँ आकर पाण्डुकम्बलशिलासन पर बैठने पर देवकन्याओं ने पूछा—महाराज ! कहाँ गए थे ? शक्र ने उनको वह बात विस्तार से बताई और बोधिसत्त्व के सदाचार तथा प्रज्ञा की प्रशंसा की। देवकन्याएँ बोलीं—महाराज ! हम आचार्य को देखना चाहती हैं। उसे यहाँ लाएँ।

शक्र ने मातली को बुला कर कहा—तात ! देवकन्याएँ गुत्तिल गन्धर्व को देखना चाहती हैं। जा उसे वैजयन्त रथ में बिठाकर ला। उसने 'अच्छा' कहा और जाकर बोधिसत्त्व को ले आया। शक्र ने बोधिसत्त्व का कुशल क्षेम पूछ कहा—आचार्य ! देवकन्याएँ तुम्हारा गन्धर्व सुनना चाहती हैं।

"महाराज ! हम गन्धर्व लोग शिल्प से ही जीविका चलाते हैं। मूल्य मिले तो गाऊँगा।"

"बजाएँ। मैं तुम्हें मूल्य दूँगा।"

"मुझे और मूल्य की जरूरत नहीं। यह देवकन्याएँ अपना अपना पुण्य कहें। ऐसा होने से मैं बजाऊँगा।"

देवकन्याएँ बोलीं—"आचार्य ! हम अपने किए पुण्य पीछे सन्तुष्ट होकर कहेंगी। गन्धर्व कर।"

बोधिसत्त्व ने सप्ताह पर्यन्त देवताओं को गन्धर्व सुनाया। वह दिव्य-वाद्य से भी बढ़ गया। सातवें दिन आरम्भ से देवकन्याओं का पुण्य पूछा।

काश्यप बुद्ध के समय एक भिक्षु को उत्तम वस्त्र देकर शक्र की परिचारिका होकर उत्पन्न हुई हजारों अप्सराओं में स्थित उस उत्तम देवकन्या से पूछा—तू पूर्व जन्म में क्या कर्म करके (यहाँ) उत्पन्न हुई ?

उससे पूछा गया प्रश्न तथा उसका उत्तर विमानवत्थु[1] में आया है। वहाँ कहा है—

---

[1] खुद्दक निकाय का एक ग्रन्थ।

जैसे उदक आदि से रहित गङ्गा को उसी तरह रूप आदि से रहित आत्मा को भी खोजते हुए संसार में चिरकाल तक भटकेगा। न हि तं लच्छति चिरकाल तक विचरते हुए भी यह जो इस प्रकार की गङ्गा या आत्मा की इच्छा करता है उसे न प्राप्त कर सकेगा।

यं लभति जो उदक या रूप आदि मिलता है उससे सन्तुष्ट नहीं होता। यं पत्थेति लद्धं हीळेति इस प्रकार प्राप्त से असन्तुष्ट हो जिस जिस सम्पत्ति की प्रार्थना करता है, उस उस को प्राप्त करके 'इससे क्या' कहकर उसका अनादर करता है, उसकी अवमानना करता है। इच्छा हि अनन्तगोचरा जो जो प्राप्त हो उसका अनादर कर दूसरी दूसरी चीज की इच्छा करने के कारण यह इच्छा, यह तृष्णा अनन्त गति वाली है। वीतिच्छानं नमो करोमसे इसलिए जो इच्छा रहित बुद्ध आदि हैं उनको हम नमस्कार करते हैं।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय का परिव्राजक ही इस समय का परिव्राजक है। तपस्वी तो मैं ही था।

२४५. मूलपरियाय जातक

"कालो घसति भूतानि..." यह शास्ता ने उक्कट्ठा के पास सुभगवन में विहार करते हुए मूलपरियाय सुत्त[1] के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उस समय तीन वेदों में पारङ्गत पाँच सौ ब्राह्मणों ने बुद्ध-शासन में प्रव्रजित हो तीनों पिटक सीख कर अभिमान से चूर हो सोचा—सम्यक् सम्बुद्ध

---

[1] मज्झिम निकाय का प्रथम सुत्त।

भी तीन पिटक ही जानते हैं। हम भी जानते हैं। तब हमारा उनका क्या अन्तर है? उन्होंने बुद्ध की सेवा में जाना छोड़ दिया। शास्ता की बराबरी के होकर घूमने लगे।

एक दिन शास्ता ने उनके आकर पास बैठे रहने के समय आठ भूमियों से सजाकर मूलपरियाय सुत्त का उपदेश दिया। उनकी कुछ समझ में नहीं आया। तब उनको विचार हुआ—हम अभिमान करते हैं कि हमारे समान पण्डित नहीं। लेकिन अब कुछ नहीं समझते। बुद्ध के सदृश पण्डित नहीं है। अहो बुद्ध गुण! उस समय से वह नम्र बन गए, वैसे जैसे सर्प के दाँत उखाड़ दिए गए हों, विष जाता रहा हो। शास्ता ने उक्कट्ठा में यथाभिरुचि रहकर वैशाली जा वहाँ गोतमक चेतिय में गोतमकसुत्त का उपदेश दिया। हजार लोकधातु काँप गईं। उसे सुनकर वह भिक्षु अर्हत्व को प्राप्त हुए। मूल परियाय सुत्त के उपदेश के अन्त में, जिस समय शास्ता उक्कट्ठा में ही विहार करते थे, भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! अहो बुद्धों की शक्ति! वे ब्राह्मण प्रव्रजित वैसे अभिमानी थे। उन्हें भगवान् ने मूल परियाय सुत्त से मान-रहित कर दिया। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी इन अभिमानी सिर वालों को मान रहित किया है, पहले भी किया है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में बाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर तीनों वेदों में पारङ्गत हो प्रसिद्ध आचार्य बन पाँच सौ माणवकों को मन्त्र बँचवाता था। वे पाँच सौ (माणवक) शिल्प सीखकर, उसका अभ्यास कर सोचने लगे—'जितना हम जानते हैं, आचार्य भी उतना ही। उसमें कुछ विशेष नहीं।' यह सोच वह अभिमान से चूर हो आचार्य के पास न जाते, उसकी सेवा सुश्रूषा न करते। एक दिन जब आचार्य बेर के वृक्ष के नीचे बैठा था, उन्होंने उसे ठगने की इच्छा से बेर के वृक्ष का नाखून से मुरच कर कहा—यह वृक्ष निस्सार है। बोधिसत्व ने यह जान कि यह मुझे ठग रहे हैं कहा—शिष्यो! एक प्रश्न पूछता हूँ।

पीड़ा पहुँचाने की इच्छा से गाली दी—श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बनाए मांस को खाता है। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! परिषद सहित निगण्ठनाथपुत्र 'श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बना मांस खाता है' कह गाली देता हुआ घूमता है। इसे सुन शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी निगण्ठनाथपुत्र 'अपने लिए बना मांस खाने वाला' कह मेरी निन्दा करता है, उसने पहले भी की है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। बड़े होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो निमक-खटाई खाने के लिए हिमालय से वाराणसी आ अगले दिन नगर में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। एक गृहस्थ ने तपस्वी को तंग करने के उद्देश्य से उसे घर में बुला, बिछे आसन पर बिठा मत्स्य मांस परोसा। भोजन कर चुकने पर एक ओर बैठ कर कहा—यह मांस तुम्हारे ही लिए प्राणियों को मार कर तैयार किया गया है। यह पाप केवल हमें न लगे, तुम्हें भी लगे।

इतना कह पहली गाथा कही—

हन्त्वा झत्वा वधित्वा च देति दानं असञ्ञतो,
एदिसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति ॥

[मारकर, कष्ट देकर तथा वध करके असंयमी दान देता है। इस प्रकार के भोजन को खाने वाला पाप का भागी होता है।]

हन्त्वा प्रहार देकर। झत्वा क्लेश देकर। वधित्वा मारकर। देति दानं असञ्ञतो असंयमी दुश्शील ऐसा करके इस प्रकार दान देता है। एदिसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति इस प्रकार उद्देश्य करके बनाए हुए भोजन को खाने वाला श्रमण भी पाप से युक्त होता है।

उसे सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

प्रश्न समझ में आया ? वे बोले—नहीं जानते। बोधिसत्त्व ने फिर उनकी निन्दा करते हुए दूसरी गाथा कही—

> बहूनि नरसीसानि लोमसानि ब्रहानि च,
> गीवासु पटिमुक्कानि कोचिदेवेत्थ कण्णवा॥

अर्थ—बहुत आदमियों के सिर दिखाई देते हैं। वे बालों वाले हैं। सभी बड़े बड़े हैं। गर्दनों पर रखे हैं। ताड़ के फल की तरह हाथ में पकड़े हुए नहीं हैं। इन बातों में किन्हीं में आपस में भेद नहीं है। लेकिन यहाँ कोई ही कानवाला है। (यह अपने बारे में कहा) कण्णवा प्रज्ञावान्। कान का छेद तो किसको नहीं है ?

इस प्रकार उन माणवकों की निन्दा कर कि तुम लोगों को कानों का छेद मात्र ही है, प्रज्ञा नहीं है प्रश्न समझाया। उन्होंने सुनकर 'अहो! आचार्य महान् होते हैं' क्षमा माँग नम्र हो बोधिसत्त्व की सेवा की।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पाँच सौ माणवक यह भिक्षु थे। आचार्य मैं ही था।

२४६. तेलोवाद जातक

"हन्त्वा छेत्वा वधित्वा च ..." यह शास्ता ने वैशाली के आश्रय कूटागारशाला में विहार करते समय सिंह सेनापति के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

उसने भगवान (बुद्ध) की शरण जा, निमन्त्रण दे, अगले दिन [illegible] भोजन कराया। 'निगण्ठों'[1] ने उसे सुन कुपित हो [illegible]

[1] निगण्ठ = निर्ग्रन्थ = जैन [illegible]

पीड़ा पहुँचाने की इच्छा से गाली दी—श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बनाए मांस को खाता है। भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! परिषद सहित निगण्ठनातपुत्र 'श्रमण गौतम जान बूझ कर अपने लिए बना मांस खाता है' कह गाली देता हुआ घूमता है। इसे सुन शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी निगण्ठनातपुत्र 'अपने लिए बना मांस खाने वाला' कह मेरी निन्दा करता है, उसने पहले भी की है। इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। बड़े होने पर ऋषि प्रव्रज्या के अनुसार प्रव्रजित हो नियम-खटाई खाने के लिए हिमालय से वाराणसी आ अगले दिन नगर में भिक्षा के लिए प्रवेश किया। एक गृहस्थ ने तपस्वी को तंग करने के उद्देश्य से उसे घर में बुला, बिछे आसन पर बिठा मत्स्य मांस परोसा। भोजन कर चुकने पर एक ओर बैठ कर कहा—यह मांस तुम्हारे ही लिए प्राणियों को मार कर तैयार किया गया है। यह पाप केवल हमें न लगे, तुम्हें भी लगे।

इतना कह पहली गाथा कही—

> हन्त्वा झत्वा वधित्वा च देति दानं असञ्ञतो,
> एदिसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति ॥

[मारकर, कष्ट देकर तथा वध करके असंयमी दान देता है। इस प्रकार के भोजन को खाने वाला पाप का भागी होता है।]

हन्त्वा प्रहार देकर। झत्वा क्लेश देकर। वधित्वा मारकर। देति दानं असञ्ञतो असंयमी दुश्शील ऐसा करके इस प्रकार दान देता है। एदिसं भत्तं भुञ्जमानो स पापेन उपलिप्पति इस प्रकार उद्देश्य करके बनाए हुए भोजन को खाने वाला श्रमण भी पाप से युक्त होता है।

इसे सुन बोधिसत्व ने दूसरी गाथा कही—

पुत्तदारम्पि चे हन्त्वा देति दानं असञ्ञतो,
भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो न पापेन उपलिप्पति ॥

[यदि असंयमी (आदमी) पुत्र तथा स्त्री को मारकर भी दान देता है, तो भी बुद्धिमान् खाने वाले को पाप नहीं लगता।]

भुञ्जमानो पि सप्पञ्ञो दूसरे मांस की बात रहे। पुत्र स्त्री को भी मार कर दुश्शील द्वारा दिए गए दान को प्रज्ञावान् क्षमामैत्री आदि गुणों से युक्त खाने वाला पाप से लिप्त नहीं होता।

इस प्रकार बोधिसत्व धर्मोपदेश कर आसन से उठकर चले गए।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय गृहस्थ निगण्ठनातपुत्र था। तपस्वी तो मैं ही था।

२४७. पादञ्जली जातक

"अद्धा पादञ्जली सब्बे..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय लालुदायी स्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

एक दिन दोनों प्रधान शिष्य प्रश्न पर विचार करते थे। भिक्षु धर्मसभा में स्थविरों की प्रशंसा करते थे। परिषद में बैठे हुए लाल उदायी स्थविर ने होंठ बिचकाए—यह क्या बतलाना जानते हैं? धर्मसभा में भिक्षुओं ने चर्चा चलाई—आयुष्मानो, लालुदायी ने दोनों अग्रश्रावकों की निन्दा कर होंठ बिचकाए। शास्ता ने यह सुन कर कहा—भिक्षुओ, न केवल अभी, पहले भी

[यह धर्म अधर्म या अर्थ अनर्थ कुछ नहीं बूझता है। यह हाँठ चबाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानता है।]

आमात्यों ने पादञ्जली कुमार की मूर्खता पहचान बोधिसत्व को राज्याभिषिक्त किया।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय पादञ्जली लालुदायी था। पण्डित आमात्य तो मैं ही था।

२४८. किंसुकोपम जातक

"सब्बेहि किंसुको दिट्ठो " यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय किंसुकोपमसुत्त के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

चार भिक्षुओं ने तथागत के पास आ कर्मस्थान मांगा। शास्ता ने उनको कर्मस्थान कहा। वे कर्मस्थान ले अपने अपने रात्रि के निवासस्थान तथा दिन के निवासस्थानों को गए। उनमें से एक ने छः स्पर्श आयतनों का परिग्रहण कर अर्हत्व प्राप्त किया। एक ने पञ्चस्कन्धों को। एक ने चारों महाभूतों को। एक ने अट्ठारह धातुओं को। उन सबने अपनी अपनी अर्हत्व-प्राप्ति तथागत से निवेदन की। उन भिक्षुओं में से एक को शङ्का हुई—यह कर्मस्थान तो भिन्न भिन्न हैं। निर्वाण एक है। सभी को अर्हत्व की प्राप्ति कैसे हुई? उसने शास्ता से पूछा। शास्ता बोले—भिक्षु, क्या तुम्हें किंसुक देखने वाले आदमियों जैसा भेद (पैदा हुआ है)? भिक्षुओं ने प्रार्थना की भन्ते! यह बात हमें कहें। शास्ता ने पूर्व-जन्म की कथा कही—

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त राज्य करता था। उसके चार पुत्र थे। उन्होंने सारथी को बुलाकर कहा—सौम्य ! हम किंसुक देखना चाहते हैं। हमें किंसुक वृक्ष दिखाएँ। सारथी बोला—अच्छा दिखाऊँगा। उसने चारों को एक साथ न दिखा ज्येष्ठ पुत्र को रथ में बिठा जंगल में ले जा ठूंठ की अवस्था में किंसुक दिखाकर कहा कि यह किंसुक है। दूसरे को छोटे छोटे पत्ते निकलने के समय। तीसरे को फूल निकलने के समय। चौथे को फल निकलने पर।

आगे चलकर एक बार जब चारों भाई एक साथ बैठे थे उन्होंने बातचीत चलाई कि किंसुक कैसा होता है ? एक बोला—जैसे जला हुआ ठूंठ। दूसरा—जैसे न्यग्रोध वृक्ष। तीसरा—जैसे मांसपेशी। चौथा—जैसे शिरीष। वे परस्पर एक दूसरे के कथन से असन्तुष्ट हो पिता के पास गए और पूछा—देव ! किंसुक कैसा होता है ? राजा ने पूछा—तुमने कैसे कैसे बताया ? सबने अपना अपना कहने का ढंग राजा से कहा। राजा बोला—तुम चारों ने किंसुक देखा है। हाँ, केवल किंसुक दिखाने वाले सारथी से इस समय में किंसुक कैसा होता है, इस समय में कैसा होता है यह बाँट कर नहीं पूछा। इसीलिए सन्देह हुआ है। यह कह पहली गाथा कही—

सब्बेहि किंसुको दिट्ठो किन्त्वेत्थ विचिकिच्छथ,
नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो ॥

[सभी ने किंसुक देखा है, किन्तु उसमें सन्देह करते हो। सभी अवस्थाओं में सारथी से नहीं पूछा।]

— —

नहि सब्बेसु ठानेसु सारथी परिपुच्छितो सभी ने किंसुक देखा है। तुम यहाँ क्या सन्देह करते हो ? सब जगह यह किंसुक ही था, किन्तु तुमने सभी अवस्थाओं में सारथी को नहीं पूछा। इसीलिए सन्देह उत्पन्न हुआ है।

—

[illegible]

इस धर्म में शङ्का करता है। यह वह अभिसम्बुद्ध होने पर दूसरी कथा कही—

एवं सब्बेहि ञाणेहि येसं धम्मा अजानिता,
ते वे धम्मेसु कङ्खन्ति किंसुकस्मिंव भातरो ॥

[सभी विषयों में, जो धर्म के जानकार नहीं हैं वह धर्मों के बारे में वैसे ही शङ्का करते हैं जैसे किंसुक के बारे में (चारों) भाई।]

जैसे वे भाई सभी अवस्थाओं में किंसुक को न देखने के कारण सन्देहशील हुए। उसी प्रकार विपश्यना ज्ञान से जिनको सब छः स्पर्शायतन तथा महाभूत धातु आदि धर्म अज्ञात हैं, स्रोतापत्ति मार्ग को प्राप्त न किए रहने के कारण, ज्ञानी न हुए रहने के कारण ही (वे) उन स्पर्श आयतन आदि धर्मों में शंका पैदा करते हैं। जैसे एक ही किंसुक में चारों भाई।

शास्ता ने यह धर्मदेशना ला जातक का मेल बैठाया। उस समय वाराणसी राजा मैं ही था।

२४९. सालक जातक

"एकपुत्तको भविस्ससि..." यह शास्ता ने जेतवन में विहार करते समय एक महास्थविर के बारे में कही।

क. वर्तमान कथा

वह एक कुमार को प्रव्रजित कर उसे बहुत कष्ट पहुँचाया करता था। श्रामणेर ने दुःख सहन न कर सकने के कारण गृहस्थ होना स्वीकार किया। स्थविर ने जाकर उसे फुसलाया—कुमारक! तेरा चीवर तेरा ही रहेगा, पात्र भी। मेरे पास जो पात्र चीवर है, वह भी तेरा ही रहेगा। आ प्रव्रजित हो। मैं प्रव्रजित नहीं होऊँगा

कहते हुए भी वह बार बार आग्रह किए जाने के कारण प्रव्रजित हो गया।

प्रव्रजित होने के दिन से फिर स्थविर उसे तंग करने लगा। उससे कष्ट न सह सकने के कारण फिर चीवर त्याग दिया। इस स्थविर के अनेक बार कहने पर भी उसने प्रव्रजित होना स्वीकार नहीं किया। बोला—तुम्हें तू सहन भी नहीं कर सकता। तेरे बिना तू रह भी नहीं सकता। अब प्रव्रजित नहीं होऊँगा।

भिक्षुओं ने धर्मसभा में बातचीत चलाई—आयुष्मानो! इस बच्चे का चित्त अच्छा था। महास्थविर के आशय को समझ कर यह प्रव्रजित नहीं हुआ। शास्ता ने आकर पूछा—भिक्षुओ, बैठे क्या बातचीत कर रहे हो? 'अमुक बातचीत' कहने पर शास्ता ने कहा—भिक्षुओ, यह केवल अभी सुहृदय नहीं है। यह पहले भी सुहृदय ही था। एक बार उसका दोष देखकर उसे फिर ग्रहण नहीं किया।

इतना कह पूर्व-जन्म की कथा कही।

ख. अतीत कथा

पूर्व समय में वाराणसी में ब्रह्मदत्त के राज्य करने के समय बोधिसत्व एक गृहस्थ कुल में पैदा हुआ। बड़े होने पर धान्य बेच कर जीविका चलाने लगा। एक सपेरा भी एक बन्दर को सिखा, [illegible] उसे सर्प को खिलाता हुआ जीविका चलाता था।

वाराणसी में उत्सव घोषित होने पर [illegible] वह सपेरे ने यह बन्दर उस धान्य के व्यापारी को सौंप [illegible] [illegible]। उत्सव खेल आकर सातवें दिन [illegible] पूछा—बन्दर कहाँ है? बन्दर स्वामी की [illegible] से जल्दी से [illegible]। उसने बन्दर को [illegible] [illegible]। [illegible] उसे एक [illegible] [illegible] [illegible]

तपस्वी कुमार ने उसे देख 'तात ! एक तार
रहा हूँ । उसे यहाँ बुला । सेंक लेगा' कहा ।
हुए यह गाथा कही—

अयं इसी उपसमसंयमे
संतिट्ठति सिसिरभयेन अ
हन्द अयं पविसतुमं अग
विनेतु सीतं दरथञ्च के

[यह ऋषि उपशमन में तथा संयम में लगा
यह इस घर में प्रवेश करे और अपने शीत तथा पीड़ा

उपसमसंयमे रतो रागादि क्लेश के उपशमन
है । संतिट्ठति, यह ठहरता है । सिसिरभयेन वायु की
से । अट्टितो पीड़ित । पविसतुमं, यहाँ प्रवेश करे ।

बोधिसत्त्व ने पुत्र की बात सुन उठकर देखते हु

खाता में आवे, दाहिन हो तो सब जगह पाखाना पेशाब करके और आग लगा कर नष्ट कर दे।

यह कह कर बोधिसत्व ने जली लकड़ी से उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन में प्रवेश कर चला ही गया। फिर उस जगह नहीं आया। बोधिसत्व ने अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वी-कुमार को कसिण-परिकर्म सिखाया। उसने अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। वे दोनों ध्यानस्थ हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता ने "न भिक्षुओ, केवल अभी किन्तु पुराने समय से भी यह ढोंगी ही है," कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय बन्दर ढोंगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मैं ही था।

तापसी कुमार ने उसे देख 'तात ! एक तापसी शीत से पीड़ित है। कांप रहा है। उसे यहां बुला। सेंक लेगा' कहा। उसने पिता से प्रार्थना करते हुए यह गाथा कही—

अयं इसी उपसमसंयमे रतो
संतिट्ठति सिसिरभयेन अट्टितो,
हन्द अयं पविसतुमं अगारकं
विनेतु सीतं दरथञ्च केवलं।

[यह ऋषि उपशमन में तथा संयम में लगा है। शीतभय से पीड़ित है। यह इस घर में प्रवेश करे और अपने शीत तथा पीड़ा को दूर करे।]

उपसमसंयमे रतो रागादि क्लेश के उपशमन में तथा शीलसंयम में लगा है। सतिट्ठति, वह ठहरता है। सिसिरभयेन वायु और वर्षा से उत्पन्न शीतभय से। अट्टितो पीड़ित। पविसतुमं, यहाँ प्रवेश करे। केवलं सब।

बोधिसत्व ने पुत्र की बात सुन उठकर देखते हुए बन्दर का भाव समझ दूसरी गाथा कही—

नायं इसी उपसमसयमे रतो
कपी अयं दुमवरसाखगोचरो,
सो दूसको रोसकोचापि जम्मो
सचे वजे इमम्पि दूसये घरं॥

[यह उपशमन तथा संयम में लगा हुआ ऋषि नहीं। यह वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला बन्दर है। यह दूषित करने वाला है। यह क्रोध करने वाला है। यह नीच है। यदि घर में आए तो इस घर को भी दूषित करे।]

दुमवरसाखगोचरो वृक्षों की शाखा पर घूमने वाला। सो दूसको रोसको चापि जम्मो जहाँ जहाँ जाए उस उस जगह को दूषित करने वाला होने से दूसक। झगड़ने वाला होने से रोसको, नीच होने से जम्मो। सचे वजे यदि इस पर्ण-

पानी में आवे, इसलिए हो तो सब जन्तु पानाना देखकर करें और मार लगा कर समाप्त कर दें।

यह कह कर बोधिसत्व ने अपनी लकड़ी से उसे डरा भगाया। वह कूद कर वन में प्रवेश कर चला ही गया। फिर उस जगह नहीं गया। बोधिसत्व ने अभिज्ञा और समापत्तियाँ प्राप्त कर तपस्वी-कुमार को कसिण-परिकर्म सिखाया। उसने अभिज्ञा तथा समापत्तियाँ प्राप्त कीं। वे दोनों ध्यान-युक्त हो ब्रह्मलोक परायण हुए।

शास्ता ने 'न भिक्षुओ केवल अभी किन्तु पुराने जन्म में भी यह ढोंगी ही है', कह यह धर्मदेशना ला (आर्य-)सत्यों को प्रकाशित कर जातक का मेल बैठाया। सत्यों के अन्त में कोई स्रोतापन्न, कोई सकृदागामी, कोई अनागामी हुए।

उस समय बन्दर ढोंगी भिक्षु था। पुत्र राहुल। पिता तो मैं ही था।